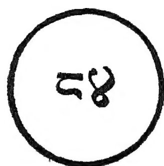



# जब सूर्योदय होगा

संपादक

श्रीदुलारेलाल भार्गव

( सुधा-संपादक )

गंगा-पुस्तकमाला का चौरासीवाँ पुष्प

# जब सूर्योदय होगा

[ शिक्षाप्रद सामाजिक उपन्यास ]

( स्व० श्रीयुत पं० भास्करविष्णु फड़के बी० ए०
की मराठी-पुस्तक का अनुवाद )

अनुवादक
पं० गोपीवल्लभ-शालग्राम उपाध्याय
( आगर-मालवा-निवासी )
संपादक—"हिंदी चित्र-
मय जगत्"
पूना

प्रकाशक
गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय
२९-३०, अमीनाबाद-पार्क
लखनऊ

प्रथमावृत्ति

सजिल्द १॥) ] सं० १९८९ वि० [ सादी १)

प्रकाशक
श्रीदुलारेलाल भार्गव
अध्यक्ष गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय
लखनऊ



मुद्रक
श्रीदुलारेलाल भार्गव
अध्यक्ष गंगा-फ़ाइनआर्ट-प्रेस
लखनऊ

# परिचय

इस पुस्तक को पाठकों के करकमल में अर्पित करने से पूर्व परिचय-स्वरूप में दो-चार बातें कह देना आवश्यक जान पड़ने से ही यहाँ कुछ लिखना पड़ा है।

इस पुस्तक के लिये यद्यपि स्वतंत्र भूमिका लिखी गई थी, तथापि उसमें कई प्रकार की त्रुटियाँ रह जाने से इस पुस्तक के मूल-लेखक श्रीयुत पं० भास्करविष्णु फड़के बी० ए० महोदय की अनुमति से 'ज्यारे सूर्योदय थशे'-नामक मूल पुस्तक के गुजराती अनुवाद में प्रकाशित भूमिका उत्तम समझी जाने से यहाँ उसका अनुवाद-मात्र दे दिया गया है।

यह पुस्तक श्रीमान् फड़के महाशय की मराठी पुस्तक 'जेव्हाँ सूर्योदय होईल' का स्वतंत्र अनुवाद है। मूल पुस्तक की एक ही वर्ष में दो आवृत्तियाँ निकल जाने और साथ ही उसका गुजराती में भी अनुवाद प्रकाशित हो जाने से इसकी उत्तमता पाठकों को सहज ही ध्यान में आ सकती है। इस ढंग के उपन्यास हिंदी में आज तक मेरे देखने में नहीं आए, क्योंकि इसके मुख्य उद्देश्य की ओर ही आज तक किसी लेखक का ध्यान आकर्षित नहीं हुआ। सामाजिक उपन्यासों में एक ही प्रकार की घर धंधे की बातें रहने से पाठकों को अब उनसे अरुचि-सी उत्पन्न हो गई है। परंतु आप लोग देखेंगे कि इस पुस्तक का विषय एकदम नया है; इसमें जिस उत्तमता से अपने विषय का प्रतिपादन किया गया है, वह देखते ही बन आता है।

सन् १८१४ में श्रीमान् फड़के महाशय से (इसके) अनुवाद के

लिये आज्ञा ले ली गई थी, किंतु कई अनिवार्य कारण-वश अब तक यह अनुवाद पूरा न हो सका। फड़के महाशय की हार्दिक इच्छा थी कि उनकी 'दिशाभूत' पुस्तक की भाँति यह अनुवाद भी शीघ्र प्रकाशित हो जाय। परंतु बीच में ही अचानक १९ एप्रिल, १९१८ को फड़के महाशय का परलोकवास हो जाने से वे इसे प्रकाशित रूप में न देख सके। अस्तु। "बलीयसी केवलमीश्वरेच्छा।"

इस पुस्तक के मूल पात्रों के नाम बदल देने पर भी इसमें घटना-स्थान मूल पुस्तक के ही रक्खे जाने से पाठकों को यह बात ज़रा खटकेगी। महाराष्ट्र-प्रांत में उत्तर भारतीय लोगों का रहना कुछ नई बात है, परंतु यह संशय व्यर्थ है। यहाँ आज भी कितने ही लोग पीढ़ियों से बसे हुए हैं। उनका आचार व्यवहार भी पूर्ववत् ही चल रहा है। रहन-सहन, पोशाक, पर्दा-सिस्टम आदि का भी अभी यहाँ उन लोगों ने ज्यों-का-त्यों साम्राज्य बना रक्खा है। अर्थात् उन लोगों के लिये यह स्वदेश-सा बन गया है। बंबई-शहर भारत का मुख्य और दर्शनीय स्थान होने से यहाँ प्रायः सभी प्रदेश के लोग आया करते हैं, और उद्योग-जीविका लग जाने पर अथवा अन्य किसी भाँति की सुविधा होते ही वे यहाँ बस जाते हैं। इसी विचार से हमने ऐसा किया है।

इसके सिवा पुस्तक के विषय में अन्य बातें इसकी भूमिका में आपको देखने को मिलेंगी। मैंने तो आज तक मूल पुस्तक को कई बार पढ़ा है, किंतु इससे अभिरुचि बदलना तो दूर, दिन-दिन जागृति-सी होती जाती है।

इस कार्य में मुझे जिन एक-दो मित्रों से सहायता मिली है, उनके प्रति कृतज्ञता प्रकट करना मैं अपना कर्तव्य समझता हूँ।

सबसे अंत में 'गंगा-पुस्तकमाला' के संचालक श्रीमान् बाबू छोटे-लालजी भार्गव बी० एस्-सी० एल्-एल्० बी० के प्रति मैं अपनी

हार्दिक कृतज्ञता प्रकट किए विना नहीं रह सकता । जिनकी कृपा और योजना से यह पुस्तक आज आपके करकमलों तक पहुँच सकी है । शम् ।

८०२, सदाशिव पेठ पूना शहर,<br>श्रीकृष्ण-जन्म ८<br>मंगलवार, सं० १९७६ वि०

विनम्र—<br>गोपीवल्लभ-शालग्राम उपाध्याय

# भूमिका

अपनी विलक्षण प्रभावोत्पादक लेखन-शैली से महाराष्ट्र में प्रतिष्ठा प्राप्त करनेवाले स्वर्गीय श्रीमान् पं० भास्करविष्णु फड़के बी० ए० की 'जेव्हां सूर्योदय होईल'-नामक मराठी-पुस्तक का यह स्वतंत्र हिंदी-अनुवाद है। निःस्वाद लेखनी द्वारा मूल पुस्तक की मिष्टता का आस्वाद यद्यपि इस अनुवाद में मिलना दुर्लभ है, तथापि विवेकी पाठकगण नीर-क्षीर के न्यायानुसार इसके गुणों से अवश्य लाभ उठावेंगे।

निसर्ग का आदर्श उपस्थित कर स्वभावचित्र को अंकित करना उच्च लेखकों का मुख्य कर्तव्य है। अब हमें देखना चाहिए कि स्वभावचित्र-लेखन केवल कौतुकमय ही हो सकता है अथवा बोध-कारक भी। इसी प्रकार वह केवल मनोरंजन करके ही रह जाता है अथवा मनोविनोद के साथ-साथ विचार-जागृति भी करता है। बस, इन्हीं दो गुणों के अनुरूप, साहित्य के कौतुकोत्पादक और सुबोधक, इस प्रकार दो विभाग किए जा सकते हैं। अधिकांश साहित्य केवल कौतुकमय ही होता है। किसी भी भाषा के साहित्य को देखिए उसमें शिक्षाप्रद ग्रंथों की संख्या इनो-गिनी ही होगी।

पाश्चात्य देशों में ( Standard work ) सर्वमान्य ग्रंथों के नाते जो पुस्तकें प्रसिद्ध हुई हैं, वे सब कौतुकमय ही हैं; क्योंकि संसार के सभी लोगों को शिक्षा और नीति-विषयक पुस्तकें पढ़ने की रुचि नहीं होती। प्रमाणार्थ आप शेक्सपियर के ग्रंथों को ले सकते हैं। इन पुस्तकों में उपदेश या शिक्षा की बातें न हों, सो बात नहीं है; किंतु उच्च कोटि का नैतिक आदर्श उपस्थित करना-मात्र ही उनके लिखने का उद्देश्य नहीं है। पर कितने ही ग्रंथ इसी उच्च आदर्श पर लिखे होते

हैं, जो विशिष्ट मतों के प्रसारार्थ विशिष्ट तत्त्वों को जनता के अंतःकरण पर जमाकर स्थायी प्रभाव डालते हैं। उनके पढ़ने से केवल मनो-रंजन ही नहीं होता, बरन् विनोद के साथ इनमें युक्ति-प्रयुक्ति से संदिग्ध रहस्यमय शब्दों का प्रयोग किया जाता है। कौतुकोत्पादक सभी रसों का उसमें समावेश हो सकता है, किंतु केवल कौतुक-मात्र उत्पन्न करना ही उनका उद्देश्य नहीं होता। समाज की अभिरुचि को नवीन और श्रेयस्कर मार्ग की ओर प्रेरित करना लोक-जागृति और ज्ञान का प्रसार करना-मात्र ही उनका मुख्य उद्देश्य होता है। इस हेतु की सफलता और ईप्सित आकांक्षाओं को लोगों के मस्तिष्क में जमा देने के लिये उन्हें कौतुकोत्पादकता का रूप दे दिया जाता है। तब वह उपन्यास या काव्य के रूप में सामने आता है। "राष्ट्र की आत्मा झोंपड़े में रहती है" यह एक महानुभाव का कथन है। "उपन्यास के मोहक तथा रमणीय वेश में प्रकट होनेवाला 'सत्य' झोंपड़े में भी प्रवेश कर सकता है।" इस प्रकार एक आंग्ल कवि ने इस उक्ति का समर्थन किया है। अर्थात् उपदेश अथवा जागृति के लिये उच्च कोटि के उपन्यासों से बढ़कर दूसरा साधन ही नहीं है।

यह ग्रंथ ( जब सूर्योदय होगा ) द्वितीय श्रेणी का ( बोधक ) है। लेखकों के कर्तव्य क्या हैं? वे किस प्रकार पूर्ण किए जाने चाहिए, इस मुख्य विषय को लेकर ग्रंथकर्ताओं की आधुनिक स्थिति का हृदयद्रावक वर्णन इसमें इस उत्तमता से अंकित किया गया है कि वह कला अच्छे-अच्छे लेखकों को भी नहीं रूँध सकती। मनोहरलाल इस कथानक के मुख्य पात्र हैं। उनकी आत्म-कहानी को पढते समय हमें ऐसा भास होता है, मानो हम अपनी ही रामकहानी पढ़ रहे हैं। परंतु लक्ष्मीदेवी-जैसी पतिव्रता सबके भाग्य में लिखी है या नहीं, इस पर हम कुछ नहीं कह सकते। विमला और रामेश्वर के रूप में पाठकों को भारत की भावी आशा का निदर्शन कराया गया

है। रामनाथ और गोविंद को विनोद के लिये खड़े करके हम कहें वही क़ानून के न्यायानुसार हठीले सरदार साहब के समान अधिकांश व्यक्तियों को योग्य मार्ग का दिग्दर्शन कराने के लिये इनका उपयोग किया गया है। बाईसवें परिच्छेद में मनोहरलाल के अपनी मूल पुस्तक में से पढ़े हुए लेखांश को सरदार माधवप्रसाद-जैसे अनेकानेक पाठकों को तैयार करने में रामनाथ और गोविंद से बहुत कुछ सहायता मिली है। रामनाथ और गोविंद की भाँति उनका मोती भी इस उपन्यास में एक महत्त्व का पात्र है। उसके कामों को पाठकगण कभी नहीं भूल सकते। कृष्णप्रसाद, भानुप्रसाद ये दोनों पात्र समाज की दूसरी दिशा का दिग्दर्शन करानेवाले होने से तुलना और विरुद्धता के कारण मनोहरलाल के गुणों का अधिक स्पष्टता से निदर्शन कराया जा सका है।

बाईसवें परिच्छेद के 'जब सूर्योदय होगा'-शीर्षकवाले लेख की महत्ता को प्रकट कर उसे जन-समाज के नेताओं के हृदय पर अंकित करने के उद्देश्य से ही पुस्तक की रचना हुई है। यह लेख मानो इस उपन्यास का मध्य बिंदु है। शेष प्रकरण उसके आस-पास घूम रहे हैं। यदि केवल यही भाग निबंध-रूप में अलग प्रकाशित किया जाता, तो वह इतना मनोरंजक और शिक्षाप्रद न हुआ होता। इसी कारण इसे उपन्यास का रूप दिया गया है। उस परिच्छेद में क्या है, वह यहाँ प्रकट करना उचित नहीं जान पड़ता है। विवेकी वाचक इसे पढ़कर उस रहस्य को जान सकेंगे।

'ज्यारे सूर्योदय थशे'-नामक<br>इसी के गुजराती अनुवाद से } श्रीमान् व्हेन प्रियमति शुक्ल

---

# समर्पण

सेवा में—

स्वर्गीय श्रीमान् पं० शालग्रामजी उपाध्याय
आगर ( मालवा )



पूज्य पितृदेव !

मेरे जिस बाल-चापल्य को देख आप कौतुक किया करते और कभी-कभी इसे देखते व पढ़ते भी थे, आपकी वही प्रिय पुस्तक आज इस अकिंचन द्वारा आपकी पुनीत स्मृति-रूप में भक्तिपुरस्सर समर्पित की जाती है। आशा है, स्वर्ग में आपकी आत्मा इसे देख अवश्य संतुष्ट होगी

| पितृ-जयंती<br>सं० १९७६ वि० | चरणरज पुत्र<br>गोपीवल्लभ शर्मा |
|---|---|

# जब सूर्योदय होगा

## प्रथम परिच्छेद

### विषय-प्रवेश

टन्-टन्-टन् करके दादर ( बंबई ) के पोर्टुगीज़-चर्च के टॉवर की घड़ी में बारह बजे। पास की एक साधारण-सी हवेली के दूसरे मंज़िल की कोठरी में बैठे हुए मनोहरलाल कुछ लिख रहे थे। उनकी लेखनी झपाटे से चल रही थी। अंत के दो घंटे सुनते ही उन्होंने सामने रक्खी हुई टाइंपीस की ओर देखकर आश्चर्य से कहा—"क्या बारह बज गए ! आधीरात हो गई ? ये चार घंटे बात-की-बात में ही निकल गए।"

लिखी हुई कहानी के, मेज़ पर बिखरे हुए, काग़ज़ों को उन्होंने इकट्ठा किया और विचार करने लगे—"आठ बजे से अब तक केवल चालीस ही पृष्ठ हुए ? सवेरे से मैं बराबर लिख रहा हूँ, तो भी अभी तक यह कहानी आधी भी न लिखी जा सकी। पहले तो मैं ऐसी पुस्तकें एक-दो दिन में ही पूर्ण कर लेता था, फिर अब ऐसा क्यों होता है ? क्या लिखने में तो मैं गड़बड़ नहीं करता ?" इस प्रकार थोड़ी देर विचार करने के बाद उन्होंने फिर लेखनी उठाई, किंतु अब उनमें लिखने के लिये उत्साह न रहा। कुर्सी के सहारे उन्होंने ज़ोर से आलस्य त्यागा और बीड़ी जलाकर दो-चार बार धुआँ भी उड़ाया, किंतु इतने पर भी सुस्ती ने उनका साथ न छोड़ा।

"ऐसा क्यों होता है ? मुझे विचार तो बराबर सूझते हैं, किंतु पहले की भाँति योग्य शब्दों में व्यक्त करने की शक्ति मुझमें नहीं रही। विचारों का प्रवाह भी पहले की ही तरह अविरोध बह रहा है, परंतु शब्द-रचना पहले की-सी सरल और सुबोध न होकर घोटाला मच जाता है।" इस प्रकार बाईं कनपटी पर हाथ रखकर कुर्सी पर कुहनी टिकाकर मनोहरलाल इस घोटाले का विचार करने लगे—"क्या मेरा मस्तिष्क तो नहीं बिगड़ गया ? अवश्य ऐसी ही कुछ गड़बड़ है । लोग कहते हैं, अजीर्ण से मस्तिष्क बिगड़ जाता है, तो भला मेरे लिये यह बात कैसे लागू हो सकती है ? दिन-भर में एक बार कभी १०-५ ग्रास खाता हूँ, उससे क्या अजीर्ण हो सकता है ? आज ही की तो बात है, सवेरे ८ बजे चाय पी थी, तब से अभी तक मुँह में पानी भी नहीं डाला। अरे ! पर जो कुछ खाता हूँ, वह भी तो पचना चाहिए। बस, यह सब अपचन का ही परिणाम है। यदि मेरी पाचन-क्रिया सुधर जाय, तो फिर यह सब गड़बड़ दूर होकर लिखने में नया उत्साह उत्पन्न होगा।"

इतने ही में उनकी कोठरी के अधखुले किवाड़ खोलकर लक्ष्मी-देवी वहाँ आ पहुँची। बेचारी लक्ष्मीदेवी की अवस्था इस समय लगभग चालीस वर्ष के होगी। चिंता और दरिद्रता ने उसके मुख-प्रकाश को छीनकर निस्तेज बना दिया था, किंतु इतने पर भी उसमें उदासीनता नाम को न थी।

लक्ष्मी के पिता एक देहाती स्कूल में मास्टर थे। घर की हालत बड़ी ही दीन-हीन थी । किंतु मास्टर साहब थे नए विचार के। उन्होंने शक्ति से परे, पैसा खर्चकर, अपनी कन्या को सब प्रकार से सुशिक्षिता बनाया था। इसी प्रकार लक्ष्मी सुस्वरूपा भी इतनी थी कि जिसके लिये उसके माता-पिता तक को गर्व था, और इसी के आवेश में आकर कभी-कभी वे कहने लगते कि "यदि यह किसी

धनाढ्य की कन्या होती, तो अवश्य कोई रँगीला सरदार इसका पाणि-ग्रहण कर सुखी होता।' किंतु इतने पर भी किसी निरक्षर धन-कुबेर को केवल द्रव्य-लोभ से अपनी कन्या को ब्याह देनेवालों में से मास्टर साहब न थे। ग़रीब ही क्यों न हो, परंतु हो विद्या-व्यसनी, सुशील और परोपकारी युवक हो, उसे ही अपनी कन्या का दान देना चाहिए, तभी दी हुई शिक्षा और उसके प्रेम-युक्त स्वभाव की सफलता होगी—यही बात हमारे मास्टर साहब की आराध्य थी। इसी कारण अपनी इच्छा की पूर्ति के लिये मास्टर साहब ने भरसक प्रयत्न किया, परंतु दैव-दुर्विपाक से अपना प्रयत्न सफलीभूत होने के पूर्व ही लक्ष्मी को इस असार संसार में अकेली छोड़ ( क्योंकि उसकी माता उसे बालक छोड़कर ही परलोक को प्रस्थान कर चुकी थी ) वे अमर-लोक के पथिक बन गए।

मास्टर लोगों के पास पूँजी ही क्या हो सकती है? आजकल तो मास्टर और दरिद्रता बिलकुल पर्यायवाची ही बन गए हैं। उनकी दशा किसी से अप्रकट नहीं। अब तो लक्ष्मी बड़ी चिंता में पड़ गई। मेरा विवाह कैसे होगा? और विवाह होने तक निर्वाह की क्या व्यवस्था होगी? यही दो प्रश्न उसके सामने रात-दिन उपस्थित रहने लगे। परंतु तक़दीर से इतना अच्छा हुआ कि मास्टर साहब के एक अभिन्न-हृदय मित्र ने लक्ष्मी को एक कन्या-पाठशाला में नौकरी दिलवा दी। इस योग से उसका निर्वाह भली-भाँति होने लगा, और उन्हीं महाशय के प्रयत्न से दो महीने बाद मनोहरलाल के साथ लक्ष्मीबाई का विवाह भी हो गया। योग्य पति के मिल जाने से सब बातें व्यवस्थित हो गईं।

इस बात को आज बीस वर्ष हो गए हैं। इन दिनों मनोहरलाल बड़े विद्वान् और अद्वितीय लेखक समझे जाते हैं। इनके उपन्यास

और गल्पों को लोग बड़ी उत्सुकता से पढ़ा करते हैं, और लेखक के नाते आपकी कीर्ति बहुत कुछ बढ़ गई है। किंतु आपकी द्रव्य-संबंधी ग्रह-दशा अनुकूल न होने से ज्यों-त्यों निर्वाह करने के अतिरिक्त अधिक द्रव्य आपको कभी न मिला। अपनी दीनता के कारण लक्ष्मी के लिये वस्त्राभूषणादि-संबंधी इच्छाएँ पूर्ण न हो सकने से मनोहर-लाल मन में सदा दुखी रहा करते थे। मानसिक श्रम को बढ़ाकर वे नई-नई और अद्भुत कहानियाँ और शिक्षाप्रद उपन्यास लिखते, प्रकाशक लोग भी मुक्तकंठ से उनकी प्रशंसा करते, परंतु नियमित पुरस्कार से एक कौड़ी भी वे अधिक न देते। इस का भी उन्हें पूरा खेद था; परंतु धन्य लक्ष्मी! जो ऐसी दशा में भी सुखपूर्वक गृहस्थी को चलाती रही, और वस्त्राभूषणादि के लिये एक अक्षर भी मुँह से न निकाला। "गहनों में क्या रक्खा है! आपके निष्कपट प्रेम से मुझे सब कुछ प्राप्त है। आप व्यर्थ ही अधिक श्रम उठाकर प्रकृति को अपाय न कर लीजिए। आजकल आपके मुँह की ओर देखा तक नहीं जाता। आँखें कैसी गड्ढे में चली गई हैं, और चेहरे पर भी चिंता की कालिमा छाई हुई है। आपकी आत्मा शांत और सुखी रहने से ही इस दासी का सर्व प्रकार कल्याण होगा।" इस प्रकार के प्रेम-युक्त सरलता के वाक्यों द्वारा लक्ष्मी अपने स्वामी को सदा संतुष्ट किया करती थी। दीनता के लिये उसने मनोहरलाल को कभी दुःखित न होने दिया। पाठकगण! कहिए, इस प्रकार के सुखमय वाक्यों को सुनने का आपको कभी सौभाग्य प्राप्त हुआ है?

लक्ष्मी आकर कुर्सी के निकट खड़ी हो गई। उसे देख मनोहरलाल का उद्वेग एकदम शांत हो गया। उन्होंने लक्ष्मी को पास की ही एक कुर्सी पर बिठा लिया, और प्रेमपूर्वक आलिंगन करते हुए कहा—"मैं तो समझा था कि तू अब तक सो गई होगी।"

लक्ष्मी—"कभी से बिस्तरे पर पड़ी हुई थी; किंतु नींद नहीं आई,

और वह आती भी क्योंकर ? आपका तो यह खर्रा पूरा होने का नाम ही नहीं लेता, वरन् अधिकाधिक श्रम किए जा रहा है, क्या ऐसी दशा में मेरा सुखपूर्वक सो रहना ठीक है ?"

मनोहर०—( तमककर ) "क्या कहा ? खर्रा ! एं !! मेरे इस उत्कृष्ट ग्रंथ की तूने अच्छी संभावना की। यही रसज्ञता का लक्षण है !"

ये वाक्य मनोहरलाल ने जान-बूझकर ही क्रोध-युक्त हो कहे थे। बेचारी अबला के नेत्रों में भीति के आँसू भर आए। आँसुओं को देख मनोहरलाल को अपने विनोद पर पश्चात्ताप हुआ। उन्होंने लक्ष्मी को हृदय से लगा लिया और कहने लगे—"प्रिये ! जो कुछ तूने कहा, वह सत्य है। यह चिट्ठा नहीं तो और क्या है ! केवल रद्दी ही, और रद्दी लोगों के लिये ही मैं यह खर्रा तैयार कर रहा हूँ। इसका प्रतिफल भी उतना ही होगा। दो सौ पृष्ठ लिखे जायँ, तब कहीं लखमीचंद सेठ ( पुस्तक-प्रकाशक ) दस रुपए का नोट हाथ पर टिकाते हैं। इतने कठिन परिश्रम पर कम-से-कम सौ रुपए तो सही ! ख़ैर, दस ही सही। इतने से ही; अपना निर्वाह तो हो रहा है। किंतु अब पहले की तरह मुझसे लिखा नहीं जाता।"

लक्ष्मीबाई ने प्रकाशकों की कृपणता पर तिरस्कार प्रकट करते हुए कहा—"उन निर्लज्जों को इतना पुरस्कार देते हुए हमारी दशा पर दया नहीं आती ! इतने दिनों के संबंध पर ही विचार करके यदि कुछ अधिक पुरस्कार दें, तो क्या उनके घर में टोटा पड़ जायगा ? हमारी पुस्तकें छापकर ही तो इतने धनवान् बने हैं !"

मनोहर०—"मेरी प्रथम पुस्तक जो लखमीचंद सेठ ने छापी थी, उसे आज कोई ३० वर्ष हो गए। उस पुस्तक पर भी मुझे दस रुपए ही मिले। कभी-कभी उन्होंने मुझे १५ से २० रुपए तक भी दिए हैं।"

लक्ष्मी०—"तो फिर अब अधिक क्यों नहीं देते ?"

मनोहर०—"अब पहले की तरह रसीली और चमत्कारिक पुस्तकों

की माँग नहीं रही, समाज की अभिरुचि बदल गई है । आजकल तो समाज का यथार्थ चित्र अंकित करनेवाले व्यावहारिक उपन्यास और गल्प-आख्यायिकाओं का ही विशेष आदर है । और ऐसी गल्प आख्यायिकाएँ प्रकाशित करनेवाले 'प्रतिभा', 'गल्पमाला' आदि-आदि अनेक मासिक तथा साप्ताहिक पत्र प्रकाशित होने लगे हैं । इन्हीं लोगों ने मेरा भाव घटा दिया है ।"

लक्ष्मी०—"तब आप समाज के लिये रुचिकर उपन्यास लिखने का प्रयत्न क्यों नहीं करते ? समाज-स्थिति का यथार्थ चित्र अंकित करने-वाले उपन्यास लिखे जाने से वे मनोरंजक होने के साथ ही शिक्षाप्रद भी होंगे, और उन पर आपको पुरस्कार भी अच्छा मिलने की संभा-वना रहेगी ।"

क्षण-भर के लिये मनोहरलाल स्तब्ध रह गए और कुछ सोचकर वे फिर कहने लगे—"अरी तू जो कुछ कहती है वह सब ठीक है, परंतु अब नई सृष्टि की रचना के लिये मुझमें शक्ति भी तो नहीं है । ऐसे उपन्यास मैं लिख सकूँगा और उन पर पुरस्कार भी पूरा मिलेगा । परंतु अभ्यास करने में भी तो कुछ दिन लग जायँगे । भला ये अभ्यास के दिन ही कैसे कट सकते हैं ? परसों ही बाज़ार के लिये हमारे पास पैसे होने चाहिए । कल तक किसी भी प्रकार मुझे यह पुस्तक समाप्त कर देनी चाहिए ।"

लक्ष्मी०—"सबेरे से लिखने बैठे, तो भी निगोड़ी यह पोथी अभी पूरी न हो पाई ?"

मनोहर०—"अभी कोई आधी लिखना शेष है, कल गुरुवार है, कल शाम तक यह पूरी होनी ही चाहिए । आज कुछ सुस्ती से काम चला है ।"

लक्ष्मी०—"यह तो सब हुआ, परंतु अभी तक आपने कुछ खाया भी है या नहीं ?" यों कहकर लक्ष्मीबाई उठी और स्टूल के पास

जाकर देखा, तो पूड़ी और भाजी ज्यों-के-त्यों रक्खे हुए थे। उसने कहा—"क्या मेरे लिये भी कुछ न खाओगे?"

लक्ष्मीबाई ने मनोहरलाल की ओर करुणार्द्र दृष्टि से देखा, उसके नेत्रों में जल भर आया। उस समय उसका स्वर इतना विनम्र था कि पत्थर भी पसीज जाता। तब मनोहरलाल के अंतःकरण पर उसका प्रभाव पड़ना आश्चर्य-की बात नहीं है। मनोहरलाल ने कहा—"अरी! तुझे ख़ुश करने के लिये जो कहेगी, सो करूँगा। परंतु खा लेने के बाद मुझसे एक अक्षर भी नहीं लिखा जाता, यह भी तो तू जानती है न? ज्यों ही भोजन किया कि मेरे शरीर का सब उत्साह........।" बोलते-बोलते मनोहरलाल को ज़ोर से खाँसी का ठसका आ गया।

लक्ष्मी०—दो-चार पूड़ियाँ खाकर विश्राम कीजिए। यह चिट्ठा तो कल पूरा हो जायगा।"

मनोहर०—"यह पंचम परिच्छेद आरंभ किया है, इसके २०-२५ पेज लिखने हैं, सो ये अभी पूरे किए देता हूँ, बस फिर ब्यालू करके सो जाऊँगा, क्यों व्यर्थ चिंता करती है?"

लक्ष्मी०—"बस हुआ पाँचवा परिच्छेद, तो कल पूरा हो जायगा। अब यदि जल्दी ही विश्राम करोगे, तो सबेरे विशेष उत्साह से लिखाई होगी।"

मनोहर०—"मुझे यह परिच्छेद तो पूरा कर ही लेने दे। कल के लिये यही कम होगा, अब कुछ देर न लगेगी। एक घंटे में ही सब हो जायगा। परंतु तू अब अधिक जागती हुई न बैठ।" इस प्रकार लक्ष्मीबाई की मनस्तुष्टि कर मनोहरलाल ने उसे बिदा किया।

बेचारी अबला कर ही क्या सकती थी। मन-ही-मन ईश्वर को मनाती हुई बिस्तरे पर जाकर पड़ रही।

---

# द्वितीय परिच्छेद

## मनोहरलाल का मूर्च्छित होना

लक्ष्मीबाई के चले जाने के बाद मनोहरलाल ने फिर लिखना आरंभ किया, किंतु दस ही मिनट के बाद फिर खाँसी ने ज़ोर पकड़ा और खों-खों करने लगे। इसी बीच उन्हें दूसरी एक ध्वनि सुनाई दी, वह शब्द किसी के रोने का था। उनका अंतःकरण तत्काल ही द्रवीभूत हो उठा, उन्होंने हाथ की क़लम रख दी और जिधर से वह रोने की आवाज़ आ रही थी, उसी ओर की गेलरी में आकर देखने लगे।

उनकी कोठरी के दीपक का प्रकाश बाहर गेलरी में गिर रहा था। उन्हें ऊपर की मंज़िल पर जानेवाली सिढ़ढी पर दो छोटे बालक एक दूसरे से चिपटकर बैठ हुए पेट पर हाथ रक्खे रोते दिखाई दिए। शीत से दोनों ठिठुर रहे थे, वे दोनों भाई-बहन थे। बहन के नेत्रों में पानी आ गया था, किंतु दरवाज़ा खोलकर मनोहरलाल के बाहर निकलते ही उसने आँसुओं को पोंछ लिया।

अरे! ये तो हमारे राधाकृष्ण बाबू के गंगा और विष्णु हैं। क्योंरी गंगा, रोती क्यों है? इतनी रात बीत गई, तो भी अभी तक तुम सोए नहीं! इस प्रकार मनोहरलाल ने बड़े प्रेम से उन बालकों से बातें करनी आरंभ कीं।

यहाँ पर पाठकों को राधाकृष्ण बाबू का परिचय करा देना आवश्यक होगा, क्योंकि आगे यही महाशय मनोहरलाल के सहायक होंगे। राधे बाबू तीसरी मंज़िल पर रहते थे। उन्हें परेल (बंबई) की म्युनिसिपैलिटी पाठशाला में बारह रुपए मासिक की नौकरी मिल गई थी। स्त्री का देहांत हो जाने के बाद उनसे विशेष काम

नहीं हो सकता था। इस कारण इंस्पेक्टर ने इन्हें निकाल दिया था।

"ओ मनोहर काका, हमको नींद नहीं आती" इस प्रकार सहज स्वभाव से विष्णुप्रसाद ने मनोहरलाल की ओर देखते हुए कहा—"बाबू अभी तक नहीं आए?"

गंगा—"बाबा नौकरी ढूँढ़ने कल्याण गए हैं; वहाँ छापेखाने में नौकरी देखते होंगे, दूर बहुत है, इसी से इतनी देर हुई होगी। अब वे आते ही होंगे।

मनोहर०—"हाँ भाई! कल्याण ज़रा दूर है। तुम्हारे बाबू अब आते ही होंगे, घबराओ मत! अरे विष्णुप्रसाद, तू मर्द होकर रोता है! अच्छा बता तो तेरी उमर कितने बरस की है, देखूँ तो कैसे जल्दी जवाब देता है!"

विष्णु०—"अब तो आठवाँ चला है। और शिवरात्रि से नवाँ लगेगा, और मनोहर काका! सुनो बाबू मेरे वास्ते रेलगाड़ी लावेंगे।"

मनोहर०—( बालकों की ही तरह ) "अरे? तब तो बड़ा मज़ा होगा। अच्छा तो विष्णुप्रसाद सबसे पहले तू उस गाड़ी में बैठकर कहाँ जावेगा?"

विष्णु०—"अभी ही जो रेलगाड़ी आ गई, तो मैं उसमें बैठकर गोपालदास बर्फ़ीवाले की दूकान पर जाऊँगा और ख़ूब मीठी-मीठी बर्फ़ी लाऊँगा। अरे काका, मुझे तो भूख बहुत लगी है, बाबू कब आवेंगे?"

मनोहर०—"क्या तुम्हें भूख लगी है? क्योंरी गंगा तुमने कब रोटी खाई थी?"

गंगा"—बारह बजे रोटी खाकर बाबूजी बाहर गए हैं, तब से कुछ नहीं खाया। अब तो मुझे भी बड़ी भूख लगी है, ऊँ...ऊँ...ऊँ...काका!"

विष्णु०—"भूख बहुत लगी है काका!.. भूख...लगी है।"

उन दोनों बालकों का इस प्रकार भूखा रहना मनोहरलाल को

अत्यंत कष्टकर हुआ। वे मन-ही-मन विचारने लगे—"हा! हमारे शिक्षित समाज की यह दशा? राधे बाबू-जैसे उद्योगी और सरल स्वभाव-वाले मनुष्य के बालकों को पेट-भर भोजन भी न मिले! शिव-शिव!

गंगा, तू विष्णुप्रसाद को लेकर मेरे साथ चल, तेरी चाची ने वहाँ पूड़ी-भाजी रख छोड़ी है, देखूँ तो कैसे झपपट चलते हो।"

विष्णुप्रसाद को उठा लेने के लिये मनोहरलाल नीचे झुके, परंतु मानसिक श्रम और उसका योग्य बदला न मिलने से निराशा उत्पन्न होने के कारण, वे इतने अशक्त हो गए थे कि उस आठ वर्ष के बालक को भी न उठा सके।

दोनों बालकों को साथ लेकर वे अपनी कोठरी में आए और स्टूल पर रक्खा हुआ भोजन उन दोनों बालकों के सम्मुख रख दिया। उन बालकों की भूख के सामने मनोहरलाल ने अपनी भूख कुछ भी न गिनी। उन्हें अभी-अभी तो अन्न-द्वेष-सा हो गया था। उन्हें अपने भोजन न करने और उस पर लक्ष्मी के दुःखित होने की बात याद आ गई। किंतु यह सब ईश्वरेच्छा का ही फल समझ उन्हें इस घटना पर खेद के बदले आनंद हुआ।

बालकों को फ़ुर्ती से खाते देख मनोहरलाल को बड़ा आनंद हुआ, किंतु थोड़ी ही देर के बाद उनका मन कुछ सुस्त-सा पड़ गया। वे विचार करने लगे कि आज तो मैंने इन बालकों को भोजन करा दिया, पर कल इनकी क्या दशा होगी, और न-जाने ऐसी कितनी कल आवेंगी! इन बालकों के समान कितने ग़रीब बालक भूखों मरते होंगे! हा! शिक्षित हिंदू-समाज!! तेरी यह दुर्दशा!!!

इन्हीं विचारों ने उनके मस्तिष्क में खलबली मचा दी, यहाँ तक कि उन्हें अपनी पुस्तक को पूरी करने का भी स्मरण न रहा। वे फिर सोचने लगे—कुछ लोग तो आनंद से मोटर में बैठकर सैर करें, और कितने ही अनाथों को पेट-भर भोजन भी न मिले! यह भेद-भाव

समाज में क्यों है ? इस प्रकार विचार करते हुए मनोहरलाल से एकदम राधाकृष्ण बाबू ने पूछा—"मनोहरलाल! हमारी गंगा क्या आपके यहाँ है ? विष्णू भी तो नहीं दीखता, क्या वह भी आकर सो गया है ?"

दोनों बालक अपने पिता की बोली पहचानकर मनोहरलाल से घर जाने को पूछने लगे, तब कहीं उनकी विचार-शृंखला टूटी, और उन बालकों को ऊपर पहुँचाया। दोनों बालकों को भोजन के लिये बिठाने के बाद वे ऐसे विचार-मग्न हो गए कि उन्हें कुछ भी स्मरण न रहा।

अब की बार उनका मन काम में नहीं लगा, वे फिर विचारने लगे। "वही प्रश्न फिर सामने खड़ा रहता है ! हाय, हमारे इस संपन्न और समृद्ध भारत में हज़ारों मनुष्य नित्यप्रति भूखों मरते हैं। इसका कारण क्या है ? मैं अपनी युवावस्था से ही इस प्रश्न पर बराबर विचार कर रहा हूँ ! उस समय तो मेरा यही मुख्य विषय था, इसे छोड़ मुझे कुछ भी नहीं सुहाता था। मेरी प्रबल इच्छा थी कि इस विषय पर कोई उत्तम-सा ग्रंथ लिखकर समाज-व्यवस्था में क्रांति उत्पन्न कर दूँ। मुझे विश्वास भी हो गया था कि यदि मेरे हाथों ऐसा उत्तम ग्रंथ लिखा जा सका, तो ग्रंथ-कर्ता के नाते मेरा मान भी बहुत बढ़ जायगा। परंतु यह सब केवल मन के लड्डू ही रहे। मुझे जान पड़ता है कि सैकड़ों ग्रंथकार इसी प्रकार के उच्च ध्येय को सम्मुख रखकर आगे बढ़ते होंगे, परंतु मुझे तो विश्वास नहीं होता कि उनमें से किसी का ध्येय सिद्ध हुआ हो। पेट के लिये सरस, मनोरंजक और चमत्कारिक उपन्यास लिखने में ही मुझ-जैसे अनेक ग्रंथकारों की आयु व्यतीत होती होगी।......पेट के लिये......दस-बीस रुपए प्राप्ति की आशा से इस प्रकार के उच्चतम ध्येय को तिलांजलि देकर, अथवा अपने लाखों देश-भाइयों के नित्य भूखों मरने के प्रश्न को भूलकर लखमीचंद, बलदेवदास आदि की जेब से निकलनेवाले दस-बीस रुपए के लोभ से मनुष्य को अपनी बुद्धि-

सत्ता का केवल 'अजब-अधार' और 'बनारस की अटारी'-जैसी बीभत्स घटनाओं का उल्लेख करने में व्यय करना कहाँ तक युक्ति-संगत है ? छिः ! यह कैसा अधःपतन है । क्या यह आत्म-विक्रय नहीं है ? वेश्याओं का समाज में बहुत क्षुद्र स्थान है, क्योंकि वे तनु विक्रय करती हैं । किंतु मुझे जान पड़ता है कि पैसे के लिये सेठजी के दिए हुए विषय पर निबंध या कथा-कहानी लिखनेवाले मुझ-जैसे ग्रंथकार अथवा पत्र-संपादक उन वेश्याओं से भी अधिक नीच हैं; क्योंकि वेश्याएँ तो बेचारी केवल अपना शरीर ही विक्रय करती हैं; परंतु हम ग्रंथकार तो अपनी आत्मा को ही बेच देते हैं, और वह भी कितने को; केवल दस-पाँच रुपए में !"

इस प्रकार विचार करते हुए मनोहरलाल अपनी कोठरी में इधर-उधर घूम रहे थे कि इसी बीच उनकी दृष्टि अपने ट्रंक पर पड़ी और तत्काल ही उसे खोलकर मनोहरलाल ने एक पुराने काग़ज़ का बंडल निकाला। उसे हाथ में लेकर वे मन-ही-मन प्रसन्न हो कहने लगे—"मेरा महत्त्व का ग्रंथ तो यह इस अवस्था में रक्खा हुआ है । अहा ! उसी के ये सब पृष्ठ हैं । इसे मैंने अधूरा लिखकर ही छोड़ दिया था । किंतु अगले परिच्छेदों के सारांश, शीर्षक उनके लिये अवतरण आदि सब सामग्री अब तक रक्खी हुई है । जिन दिनों मुझमें लिखने के लिये पूरा उत्साह था, उसी समय यदि मैं इसे पूर्ण कर लेता, तो कितनी अच्छी बात थी। प्रभो ! उस समय भूखों मरनेवाले दुर्बल देश-बंधुओं की दुःख-कथा को समाज के सम्मुख रखकर उनकी दशा सुधारने के लिये मुझमें कितना उत्साह और आशाएँ थीं। उन्हीं आशाओं से प्रेरित होकर मैंने इस ग्रंथ का आरंभ किया था। उस समय मुझे जान पड़ता था कि यह बड़ी उत्तमता से रचा गया है, किंतु बीच में कई वर्ष बीत जाने के कारण अब यह मुझे कहाँ तक रुचिकर होगा, सो मैं नहीं कह सकता ।"

मनोहरलाल ने पुस्तक को पढ़ना आरंभ किया। पृष्ठों पर पृष्ठ उलटकर पूरी देख डाली, और फिर वे स्वगत कहने लगे—"सचमुच ही यह ग्रंथ उत्कृष्ट है और बात भी ठीक है; क्योंकि यह ग्रंथ किसी आर्थिक लोभ के लिये नहीं लिखा गया है। भारत के क्षुधार्त अनाथों का हाहाकार बंद हो, इसी ( ध्येय ) से यह लिखा गया और विचारों के आवेश में मन को जो कुछ सत्य जान पड़ा वही इसमें लिखा गया है। पर प्रभो! यदि यह ग्रंथ अब भी पूरा हो सके तो ..............?"

मनोहरलाल के नेत्रों में एकदम विलक्षण तेज दिखाई पड़ा। बस, यही ठीक है; इस ग्रंथ को पूरा कर ही देना चाहिए। अब इसे कोई ७½ महीने लगेंगे और पूरा हो जाने पर अर्थ-प्राप्ति भी परिश्रम के अनुसार न होगी, तथापि मेरी आत्मा तो एक प्रकार से मुक्त हो जायगी। आज तक मेरी आत्मा लखमीचंद सेठ के यहाँ गिरवी रक्खी हुई थी, उसे मुक्त करा लेने पर मुझे कुछ समाधान अवश्य हो जायगा; बस यही निश्चय ठीक है। इस प्रकार विचार को पक्का कर मनोहरलाल ने हर्ष सूचक ताली बजाई और उनके मुख पर भी कुछ उत्साह दीखने लगा।

कर्म-धर्म-संयोग से उनका ध्यान टेविल पर रक्खी हुई पुस्तक की ओर गया, और तत्काल ही उनके नेत्रों का तेज विलीन होकर मुख म्लान हो गया। ज्यों-त्यों कर उन्होंने लिखे हुए काग़ज़ इकट्ठे किए और कुछ देर तक उसकी ओर देखकर विचार करते हुए दाँतों से होंठ दबाकर वे कहने लगे—"क्या? दस रुपए के लिये मैं फिर अपनी आत्मा को बेच दूँ!"

"नहीं, ऐसा कभी न होगा। आज २९ क्या ३० वर्ष तक सेठजी की ग़ुलामी की, यही बहुत है। अब मैं उनकी ग़ुलामी से मुक्त हो जाऊँगा। अपनी आत्मा, जो आज तक सेठजी के यहाँ गिरवी थी, उसे इसी क्षण मुक्त कराऊँगा।"

उस पुस्तक के पृष्ठों की ओर उन्होंने फिर एक बार देखा और पागल की तरह एक बार हँसकर उन्हें फाड़ना आरंभ किया।

जब उसके सहस्रों टुकड़े हो गए, तब उन्हें कुछ समाधान हुआ अपने कृतकार्य का प्रकाश थोड़ी ही देर में उनके अंतःकरण पर गिरा और वे विचारने लगे—"मैंने यह पुस्तक फाड़ तो डाली, परंतु अब परसों बाज़ार के लिये पैसे कहाँ से मिलेंगे? मैं घड़ी-भर के लिये भूखों भी मर सकूँगा, परंतु मेरे लिये, मेरे अविचार के लिये मेरी प्राणेश्वरी को क्यों कष्ट सहना पड़े। उसने आज तक ऐसे कितने ही प्रसंगों पर मुँह से एक अक्षर भी न निकाला। उसी प्रकार वह इस बार भी अपनी बात निभा लेगी और उपवास तक कर लेगी। परंतु ... ...।"

फटे हुए काग़ज़ के टुकड़ों की ओर देखकर वे कुछ देर खड़े रहे, और फिर कुछ विचार करते हुए वे स्वगत कहने लगे—

"केवल अविचार के कारण ही उसके लिये उपवास का प्रसंग आया है। क्या मैंने यह अच्छा काम किया? 'आत्मा' को ग़ुलामी से मुक्त करने के आवेश में सारासार के विचार से भी मैं परे पहुँच गया।"

पाठकगण! क्या उस समय सारासार विचार करने की बुद्धि मनोहरलाल में थी? वे तो उस समय लगभग उन्मत्त-जैसे बन गए थे। कोठरी में रक्खी हुई सब वस्तुएँ उन्हें चमत्कारिक दीखने लगीं। कुर्सी, टेबुल, क़लम, दावात आदि नित्योपयोगी वस्तुएँ तक उन्हें विपरीत जान पड़ीं और उनकी आँखों के सामने अँधेरा छा गया। सारा घर उन्हें घूमता हुआ दीख पड़ा। सारा शरीर और प्रत्येक अवयव काँपने लगा। उनका म्लान मुख सहसा लाल पड़ गया और ज़ोर की मूर्च्छा आकर वे धड़ाम से नीचे गिर पड़े।

---

# तृतीय परिच्छेद
## औषधोपचार

"मज्जा-तंतु की क्षीणता से ऐसा हुआ है, और यह सब केवल मूर्च्छा पर ही बीता, अन्यथा कभी-कभी बड़ी भयंकर घटना उपस्थित होने का डर रहता है।" इस प्रकार डॉक्टर फाटक मनोहरलाल की चारपाई के निकट बैठे हुए लक्ष्मीबाई को धैर्य बँधा रहे थे।

मनोहरलाल के गिरने की आवाज़ सुनकर लक्ष्मी जाग पड़ी और इस धड़ाके का कारण जानने के लिये यह मनोहरलाल की कोठरी की ओर गई, तो उन्हें मूर्च्छितावस्था में पाया। किंतु वह बड़ी धीर थी, इस कारण घबराकर रोते हुए न बैठ, उसने राधे बाबू को पुकारा। वे तत्काल ही वहाँ आ पहुँचे। वे स्वभावतः दयालु होने के कारण मनोहरलाल की दशा देख बड़े दुखी हुए। इसके सिवा उनके दोनों बालकों ने अपने भोजन पाने की बात भी उन्हें सुना दी थी। राधाकृष्ण बाबू ने मनोहरलाल को ज़मीन पर से उठाकर चारपाई पर सुलाया। तत्काल ही वे डॉक्टर को बुलाने के लिये चल दिए। डॉक्टर फाटक बड़े सज्जन पुरुष थे। एल्० आर० सी० पी०; डी० पी-एच्० आदि कितनी ही उच्च परीक्षाएँ देकर उन्होंने बड़ी ख्याति प्राप्त कर ली थी, तथापि ग़रीबों की सेवा के लिये वे आधीरात को भी तैयार रहते थे।

डॉक्टर साहब के आने पर उपर्युक्त बातें हुईं। बेचारी लक्ष्मी ने नेत्रों में जल भरकर पूछा—"डॉक्टर साहब, जल्दी ही आराम हो जायगा न?"

डॉक्टर—"हाँ; बाई! इन्हें बहुत जल्दी आराम हो जायगा।

घबराने की कोई बात नहीं है। परंतु इन्हें बड़ी सावधानी से सँभालना चाहिए। बच्चे की तरह इन्हें दिन-भर में ४-५ बार थोड़-थोड़ा खाने के लिये देना चाहिए। दूध और घी की ख़ूराक इनके लिये पूरी होनी चाहिए; क्योंकि श्रम की अधिकता से प्रकृति इस दशा को पहुँची है।

बेचारी लक्ष्मी का गला भर आया, वह कहने लगी—"इन दिनों इन्हें इस प्रकार कठिन परिश्रम करते देख मुझे भी इस बात का भय था कि कहीं प्रकृति न बिगड़ जाय।"

डॉक्टर—"कम-से-कम पाँच-छः महीने तो विश्राम लेना ही चाहिए, और यदि वर्ष-भर विश्राम मिले, तब तो पूछना क्या है? इसके सिवा जल-वायु बदलने के लिये मॉथेरान या महाबलेश्वर की ओर जाना बहुत अच्छा होगा।"

डॉक्टर साहब बड़े दयालु थे, इस कारण मनोहरलाल की प्रकृति को सुधारने के लिये वे उचित सम्मतियाँ दिया करते थे। परंतु दूध और घी का प्राप्त होना बड़ा कठिन था, बेचारी लक्ष्मी के पास बाज़ार से दाल और चावल लाने तक को पैसा न था, तथापि उसने यह बात डॉक्टर साहब पर प्रकट न होने दी।

"फिर दोपहर को आऊँगा" यों कहकर डॉक्टर साहब तो चले गए। उनके जाने के बाद बेचारी लक्ष्मी औषधोपचार के लिये पैसे की चिंता में पड़ी। इतने ही में उसे मनोहरलाल की लिखी हुई आख्यायिका का स्मरण आया और वह मन-ही-मन कहने लगी—"पुस्तक लगभग आधी के लिखी जा चुकी है। उतनी ही लेकर सेठजी के पास जाना चाहिए और इनकी बीमारी का हाल भी उन्हें सुनाना चाहिए। संभव है कि वे कम-से-कम दस रुपए तो दे ही देंगे। इनके अच्छे हो जाने पर पुस्तक पूरी कर दी जायगी। पड़ोसिन रमाबाई को घड़ी-भर के लिये इनके पास बैठने को कहूँगी, और दिन निकलते ही सेठजी के पास

जाकर रुपए ले आऊँगी। इस विचार को पक्का करके वह मनोहर-लाल की टेबुल के पास गई और उस पुस्तक के मनोहरलाल द्वारा किए हुए सहस्रों टुकड़े देख स्तब्ध रह गई; उसे कुछ न सूझ पड़ा।

"जान पड़ता है, इन्होंने ही इसे फाड़कर टुकड़े किए हैं; क्योंकि इन्हें ऐसी कथाएँ लिखने से बड़ी घृणा थी, और यह बात कई बार कह भी देते थे। कदाचित् संतप्त होकर इन्होंने ही ऐसा किया हो, और उसी संताप के मस्तिष्क पर पड़ने से ही यह मूर्च्छा आई हो। मुझे इसके फाड़े जाने का कोई दुःख नहीं है, परंतु औषधोपचार के लिये पैसा कहाँ से मिलेगा?"

लक्ष्मी इस प्रकार विचार कर ही रही थी कि इतने में उसका ध्यान एक बंडल की ओर गया, जो एक ब्राउन पेपर में बँधा हुआ था। वह मन-ही-मन कहने लगी—

"इनके गिरने का शब्द सुनकर जब मैं यहाँ आई, उस समय यह पुस्तक इनके हाथ में थी। इसमें क्या है, सो मैं समझ गई हूँ।"

'जब सूर्योदय होगा' लेखक 'सुदर्शन' मुखपृष्ठ पर का नाम पढ़ते ही उसे सब बातें विदित हो गईं।

इसी पुस्तक को इन्होंने कितने ही वर्ष पूर्व लिखना आरंभ किया था; क्योंकि उन दिनों इन्हें यह विषय बड़ा प्रिय था। इसी पुस्तक के लिये इन्होंने बड़ा श्रम किया था। इसी पुस्तक के द्वारा ग्रंथकर्ता के नाते इन्हें बड़ी प्रतिष्ठा प्राप्त होने और समाज में प्रच-लित अन्याय की रुकावट होने की दृढ़ आशा थी। ये समझते भी थे कि मेरे ग्रंथ का ध्येय उच्चतम है। ग्रंथकर्तृत्व ऐसा ही होना चाहिए। मनोहरलाल की युवावस्था का मनोराज्य था और अभी तक वह ज्यों-का-त्यों मनोराज्य ही बना रहा।

कारण यह है कि पुस्तक अभी तक अपूर्ण ही थी। सांसारिक प्रपंच के कारण ऐसी-वैसी आख्यायिकाएँ लिखने में ही इनका अधिक समय

व्यतीत हो जाने से इस पुस्तक को पूरा करने के लिये इन्हें समय न मिला । 'जब सूर्योदय होगा'-नामक ग्रंथ बहुत गंभीर और तात्त्विक विचारों से पूर्ण था । मनोहरलाल जानते थे कि इस ग्रंथ की यद्यपि बहुत खपत न होगी, इस कारण विशेष द्रव्य प्राप्त होने की भी संभावना नहीं है । तथापि यदि विशेष समय मिलता, तो ये अवश्य इसे पूरा कर लेते । परंतु घर के ख़र्च की अधिकता से विवश हो, इन्हें ऐसी-वैसी कहानियाँ लिखनी पड़ीं, और सब विचार धरे ही रह गए ।

इतना होने पर भी इस पुस्तक का उन्हें बार-बार स्मरण होता रहा । जब कभी उन्हें पैसे की बहुत तंगी आ सताती और ऐसी कथाओं के लिखने से घृणा उत्पन्न होती, तब वे लक्ष्मी से कहा करते कि पाँच-छः महीने की पूँजी अपने पास इकट्ठी होते ही इस लेखन-व्यवसाय को मैं जलांजलि दे दूँगा और अपना प्रिय ग्रंथ पूरा करूँगा । मुझे विश्वास है कि उत्तम अवसर प्राप्त होने पर मेरा यही ग्रंथ मान की दृष्टि से देखा जायगा । यह तथा इसी प्रकार महत्त्व के अन्य सामाजिक प्रश्नों की चर्चा करनेवाले ग्रंथों को मैं 'सुदर्शन' के नाम से प्रकाशित करनेवाला हूँ ।

परंतु यह सब केवल मनोराज्य ही था, और इसमें अब लक्ष्मी भी निमग्न जान पड़ती थी; क्योंकि अन्य सब विचारों को त्याग कर वह भी उसे पढ़ने लग गई । परंतु उसका मनोराज्य अधिक देर न टिक सका, और उसे औषधोपचार के लिये पैसों की फ़िकर पड़ी ।

क्या इस पुस्तक पर सेठजी कुछ रुपए देंगे ? देना तो अवश्य चाहिए; क्योंकि सेठजी से इनका बहुत पुराना संबंध है । इस बीमारी की दशा में तो वे कभी नाहीं न करेंगे । इस प्रकार लक्ष्मी ने निश्चय कर लिया ।

यद्यपि लक्ष्मी सुशिक्षिता थी, तथापि वाङ्मय-संबंधी उसे विशेष

ज्ञान न था। इसके सिवा माता-पिता का शीघ्र ही परलोक वास हो जाने से उसे सांसारिक ज्ञान भी अधिक न था। तो भी पुस्तक लेकर सेठजी के पास जाने का उसने निश्चय कर लिया।

---

# चतुर्थ परिच्छेद

## सेठजी की मुलाक़ात

सेठजी का ऑफ़िस ठाकरद्वार पर था।

दिन निकलते ही लक्ष्मी सेठजी की ओर चल दी। उनके पास पहुँच उसने नम्र निवेदन किया कि "आपके स्थायी लेखक ने एक आख्यायिका अधिकांश पूर्ण कर ली थी, परंतु अब वे बीमार हैं, इस कारण भूल से उन्होंने अचेतनावस्था में फाड़कर उसे नष्ट कर दिया। अब मैं उनकी एक दूसरी पुस्तक लेकर आई हूँ, इसका कुछ भाग लिखना रह गया है, वह तबीयत ठीक होते ही पूरा कर देंगे। उनके औषधोपचार के लिये ख़र्चे की आवश्यकता है। कृपा कर दस-पाँच रुपए देंगे, तो अच्छी बात होगी।"

सेठजी ने पुस्तक हाथ में लेकर पृष्ठ उलटते हुए गंभीरता से कहा—"यह पुस्तक हमारे उपयोग की नहीं है, और न इस पर हम कुछ पुरस्कार ही दे सकते हैं। इसका हमें बड़ा खेद है। क्या किया जाय, हमारा भी तो पैसा अड़ता है।"

सेठजी का उत्तर सुन लक्ष्मी की क्या दशा हुई होगी, इसका अनुमान स्वयं पाठकगण ही कर लें। परंतु लक्ष्मी ने इतने पर भी संतोष किया।

लक्ष्मीदेवी! यद्यपि तुम बड़ी मानिनी महिला थीं, और दूसरे के पास जाकर याचना करना तुम्हें मरणप्राय दुःखप्रद था। परंतु प्रसंग के कारण तुम भी क्या करतीं।

पुस्तक के पृष्ठों को लपेटकर उसने फिर कहा—

"यदि इस पुस्तक पर आप कुछ नहीं दे सकते, तो क्या उधार भी कुछ रुपए न दे सकेंगे?"

परंतु सेठजी के सामने यह विनय भी व्यर्थ हुई; क्योंकि उन्हें तो नित्य-प्रति सैकड़ों के ऐसे निवेदन सुनना पड़ते थे। वे दोनों हाथों के बीच सिर रख अँगड़ाई लेते हुए कहने लगे—"पहले से ही पुरस्कार देने का हमारा नियम नहीं है। जब वे पूरी पुस्तक लेकर आवेंगे, तभी नियमित पुरस्कार दिया जा सकेगा। मुझे उनसे पिछला भी कुछ रुपया लेना है। अब आगे के लिये ऐसी 'कर्ण-पुच्छ-हीन घोड़े' के समान अन्यान्य पुस्तकों की भी हमें आवश्यकता नहीं है......।"

आगे की बात सुनने के लिये लक्ष्मी वहाँ खड़ी न रही; क्योंकि अपमान और निराशा-प्रदर्शक आँसुओं को वह सेठजी के सम्मुख गिराना नहीं चाहती थी।

वह निराश मुँह बनाए धीरे-धीरे चर्नी रोड स्टेशन की ओर जा रही थी, और भविष्य के विचार में निमग्न थी। जब वह ठाकुरद्वार के नाके के पास आई होगी कि इतने ही में सामने से एक मोटर बड़े वेग से आ गई। उस समय लक्ष्मीबाई का मस्तिष्क ठिकाने पर न था। पास ही चलते हुए आदमी ने यदि उसका हाथ पकड़कर खींचा न होता, तो वह अवश्य मोटर से कुचल जाती। तो भी इस घटना का प्रभाव उसके मस्तिष्क पर पड़े विना न रहा। वह ज्यों ही फ़ुटपाथ पर बैठी कि उसे भयंकर मूर्च्छा आ गई।

मार्ग में चलते हुए कुछ लोगों को दया आ गई और उन्होंने इसे उठाकर पास ही के एक अस्पताल में पहुँचा दिया। ज्यों ही डॉक्टर ने दवाई की एक ख़ूराक पिलाई कि लक्ष्मी को होश हुआ और वह कहने लगी—"मैं कहाँ हूँ? यह क्या घटना है?"

क्षण-भर में ही उसे सब बातों का स्मरण हो आया और वह इधर-उधर देखती हुई कहने लगी—"मेरे हाथ में की पुस्तक?"

"कैसी पुस्तक ? उसमें क्या था बाई !" इस प्रकार उसे उठाकर लानेवाले आदमियों में से एक ने प्रश्न किया।

लक्ष्मी०—"मेरे हाथ में एक काग़ज़ का छोटा-सा बंडल (पुस्तक) था। जब मुझे मूर्च्छा आई......।"

वह मनुष्य बीच में ही बोल उठा—"तब वह रास्ते में पड़ा होगा, मैं जाकर देखे आता हूँ।" यों कहकर वह आस-पास सब देख आया, और कहने लगा—"बाई, तुम्हारा बंडल कहीं नहीं दीखता। इस बात को भी १०-१५ मिनिट हो गए। अब वह कैसे मिल सकता है। कोई विशेष काम का तो न था ?"

लक्ष्मी निराश होकर उठ खड़ी हुई। अभी तक उसका सारा शरीर काँप रहा था। वह विनम्र हो डॉक्टर साहब से कहने लगी—"मुझ पर बड़ा उपकार हुआ। इसके बदले में मैं क्या दूँ ? इस समय मेरे पास एक पैसा भी नहीं है। इसके लिये मुझे बड़ी लज्जा आती है। क्या करूँ !"

डॉक्टर साहब ने उदारता से कहा—"कोई फ़िकर नहीं, हमारा घोड़ा तो चलता ही है।"

लक्ष्मीबाई सडक पर आकर बड़ी देर तक वह बंडल खोजती रही। उसकी यह दशा देख आते-जाते हुए लोग उसके पागलपन पर हँसने भी लगे। सचमुच ही इस समय वह अर्धविक्षिप्त-सी बन गई थी। उसे विचार हुआ कि उनका कठिन परिश्रम से लिखा हुआ ग्रंथ सदा के लिये खो जाय और जब वे अच्छे होने पर उसके संबंध में पूछें, तो मैं क्या उत्तर दे सकूँगी ? उनकी इतने दिनों की मिहनत व्यर्थ गई... । प्राण-प्रिय ग्रंथ के खो जाने की बात जब उन्हें विदित होगी, तब उनके मन की क्या दशा होगी, इस प्रकार गतानुशोच करती हुई वह रास्ता पार कर रही थी। इधर घर से निकले हुए बड़ी देर हुई है, उनकी क्या दशा हुई होगी, इसकी भी चिंता थी।

जब लक्ष्मी घर पहुँची, तो बेचारी रमाबाई पंखे से मनोहरलाल पर हवा कर रही थी, और डॉक्टर साहब भी अभी ही आकर बैठे थे। वे मनोहरलाल की नाड़ी देखते हुए गंभीर स्वर से कहने लगे—"इन्हें भ्रम हो गया है, ये बराबर बड़बड़ाते हैं। मेरी समझ में ये किसी पुस्तक के संबंध में बोलते हैं। 'जब सूर्योदय होगा' इस नाम की कोई पुस्तक है क्या?"

उत्तर देते समय लक्ष्मी का गला भर आया। उसने कहा—"हाँ, इनकी लिखी हुई एक पुस्तक का ही यह नाम है।"

डॉक्टर—"बस, उसी पुस्तक के लिये इन्हें बहुत श्रम करना पड़ा है, और कोई अनुकूल योजना न हो सकने से इनके मन को भारी धक्का पहुँचा है।"

लक्ष्मी मन-ही-मन कहने लगी—"यदि अब मेरे द्वारा उसके खोए जाने की बात इन्हें विदित हो जाय, तब तो इनकी बड़ी बुरी दशा हो जायगी!"

डॉक्टर साहब ने फिर कहा—"उसी पुस्तक पर इनका बड़ा प्रेम है, यह बात इनके बड़बड़ाने से जान पड़ती है। होश आने पर ये उसके संबंध में पूछेंगे, इसलिये यदि वह पुस्तक यहाँ हो, तो इनके पास रखना ठीक होगा।"

लक्ष्मी का चेहरा बिलकुल उतर गया, किंतु डॉक्टर साहब का ध्यान मनोहरलाल की ओर होने से वे लक्ष्मी के मन की दशा न जान सके।

डॉक्टर—"इन्हें चलने-फिरने की शक्ति आते ही महाबलेश्वर, मॉथेरान या अन्य किसी खुली हवावाले स्थान को ले जाना ठीक होगा। यहाँ की गड़बड़ और रोगीली वायु से इन्हें शीघ्र ही आराम न हो सकेगा।"

लक्ष्मी०—"डॉक्टर साहब, आप जो कुछ कहते हैं, वह सब ठीक है; परंतु हमारा मॉथेरान या महाबलेश्वर जाना शायद ही हो सकेगा;

क्योंकि हमारी दशा कैसी है, यह आप जानते ही हैं, पास में एक भी पैसा नहीं।"

डॉक्टर—"क्या, पैसा नहीं ? इतनी बडी 'बंबई बैंक' यहाँ पास में होकर भी पैसे न होने का मतलब क्या है ? यह बात मैं नहीं मान सकता।"

बेचारे डॉक्टर साहब बड़े दयालु थे। वे ग़रीबों को विना मूल्य ही औषधि देते थे। परंतु इतने-इतने बड़े बैंक होते हुए भी बंबई के लोग कहते हैं कि हमारे पास पैसा नहीं, यह बात कहाँ तक ठीक है ! उन्होंने फिर ज़रा डरते हुए कहा—"इतनी कजूसी करना ठीक नहीं है, हवा बदलनी ही चाहिए, क्या आस-पास तुम्हारा कोई रिश्तेदार नहीं है ?"

लक्ष्मी०—"एकमात्र 'काका साहब' ही हैं, जो सिंध-प्रांत छोड़कर अब पूने के पास बिट्ठलवाड़ी की ज़मींदारी करते हैं और 'सरदार साहब' के नाम से विख्यात हैं।"

डॉक्टर—"जिन्होंने धर्मार्थ पुस्तकालय स्थापित किया है, वे ही न ?"

लक्ष्मी०—"हाँ, वे ही इनके काका या चाचा होते हैं।"

डॉक्टर—"तब फिर क्या कमी है ! उनके पास तो बहुत-सा पैसा है। वे अवश्य तुम्हारी सहायता करेंगे।"

लक्ष्मी०—"मुझे आशा नहीं कि वे कुछ सहायता दें; क्योंकि पहले से ही परस्पर बिगाड़ हो गया है।"

डॉक्टर—"क्या ! झगड़ा हो गया है। उँह, उसमें क्या रक्खा है। जब कोई बीमार पड़ जाता है, तब लोग पिछली सब बात भूल जाते हैं। तुम उनके पास अवश्य जाओ। अगर ऐसा न करके इनकी हवा न बदली, तो रोग बढ़ जायगा और परिणाम भी न-जाने कैसा भयंकर होगा।

इस प्रकार समझाकर डॉक्टर साहब तो चले गए। अब लक्ष्मी को आगे की सूझी।

---

# पंचम परिच्छेद

## सरदार काका साहब

सरदार काका साहब बहुत वृद्ध थे। उनकी अवस्था अस्सी वर्ष से भी अधिक थी, तथापि उनका शरीर-संगठन ४०-५० वर्ष की अवस्थावाले मनुष्य के समान था। सिर-दर्द को भी वे अभी तक जानते न थे। मनुष्य के लिये व्यवहार के योग्य कुछ नियम उन्होंने बना रक्खे थे। वे स्वयं उनके अनुसार चलते थे, और दूसरों से भी उनके पालन कराने की उन्हें सदा इच्छा रहती थी। निर्व्यसनी भी वे पक्के थे। मुँह में कभी पान-तंबाकू तो अलग रहे, सुपारी का टुकड़ा तक न डालते थे। इसी भाँति उदार भी पूरे ही थे। ईश्वर की दया से उनके पास पूर्वजोपार्जित द्रव्य भी अच्छी तरह संगृहीत था। उनके मतानुसार उत्तम समझी हुई संस्थाओं को आश्रय भी मिलता था। उन्होंने इतनी संस्थाओं की सहायता और दान दिया कि बंबई-प्रांत-भर में उनका नाम फैल गया था।

सरदार साहब का आचरण बड़ा शुद्ध था। वे बड़े न्यायी थे, किंतु उनके न्याय में दया का बिलकुल ही अभाव था। परंतु जगत् में दया के बिना केवल न्याय की ही तुला पर आधार रखने से काम नहीं चल सकता। इतने पर भी उनका अटल सिद्धांत था कि "व्यवहार के लिये मैंने जो नियम बना दिए हैं, उनके अनुसार आचरण करने से इस संसार में किसी बात की कमी नहीं है।" यही कारण था कि उनके नियम-विरुद्ध आचरण करनेवालों पर वे कभी दया न करते थे।

उनका स्वभाव एकमार्गी था, जो बात एक बार तबियत में

जँच गई, वह वज्र-लेख बन जाती थी। उन्हें पुस्तकें संग्रह करने का बड़ा शौक़ था। यदि यह भी कह दिया जाय कि उनको यही व्यसन था, तो अनुचित न होगा। पुस्तकों पर उनकी अटल श्रद्धा थी। प्रत्यक्ष परमेश्वर पर भी उनको इतना प्रेम था या नहीं, सो हम नहीं कह सकते। उन्हें विश्वास था कि पुस्तकें संग्रह करना ही मनुष्य-मात्र का इति-कर्तव्य है! इसके प्रमाणार्थ उनके सरदार-भवन में लगभग पचास हज़ार छोटी-बड़ी पुस्तकें मौजूद थीं।

बंबई-प्रांत के सार्वजनिक पुस्तकालयों में भी शायद ही कहीं इतना भारी संग्रह हो। पुस्तकों के पृष्ठ उलटने-मात्र ही से सरदार साहब को ब्रह्मानद की प्राप्ति हो जाती थी। वे दिन-भर इसके सिवा दूसरा कुछ भी काम न करते थे। मित्रों में जाकर गप्पें हाँकना, दो-चार इष्ट-मित्रों को घर बुलाकर बातें मारना आदि उनके नियम के विरुद्ध बात थी।

सरदार साहब के पूर्वज एक-दो पीढ़ी से इधर आ बसे थे। उनका सरदार-भवन बिलकुल पेशवाई तर्ज़ का था। परंतु इतने बड़े भवन में केवल तीन ही मनुष्य रहते थे। सरदार साहब, उनकी स्त्री की भांजी विमला और उनके कारबारी भानुप्रसाद।

सरदार साहब के कोई संतति न थी। उनकी सद्गुणी भार्या कई वर्ष पूर्व स्वर्गगामिनी हो चुकी थी। विमला की माता के उसे बाल्यावस्था में ही छोड़ इस नश्वर जगत् से बिदा हो जाने के कारण सरदार साहब ने ही उसे पाल-पोसकर बडा किया था, उस पर उनको विशेष प्रेम भी था।

सरदार साहब की मृत्यु के बाद उनकी उस अतुल संपत्ति की स्वामिनी विमला ही होगी, यह बात उनका विमला पर असीम प्रेम देखकर प्रत्येक मनुष्य समझ सकता था।

सरदार साहब स्त्री-शिक्षा के भी बड़े पक्षपाती थे, किंतु कन्या-पाठ-

शालाओं के वे पक्के विरोधी थे। लड़कियों को पाठशाला में भेजने से उनके मन पर कुछ विचित्र ही परिणाम होता है। वे नाना भाँति के रंग-ढंग सीखती हैं। पाठशाला की शिक्षा का सांसारिक जीवन में उनके लिये यत्किंचित् भी उपयोग नहीं हो सकता, इस प्रकार उनको दृढ़ विश्वास था। वे चाहते थे कि लड़कियों को घर पर ही शिक्षा दी जावे। और वह भी विशिष्ट प्रकार से, निश्चित नियमानुसार ही दी जावे। इसी के अनुसार विमला को उन्होंने घर पर ही लिखना-पढ़ना सिखाया था। रामचरित, महाभारत-जैसे धार्मिक ग्रंथों के भाव समझ लेने-मात्र की प्रवृत्ति होना ही लड़कियों की शिक्षा के लिये पर्याप्त है। विमला को भी इतनी ही शिक्षा दी गई थी। रेलवे लाइनें, एशिया की झीलें, और जापान के ज्वालामुखी अथवा अ० ब० क० च० की उदाहरणमाला की निरर्थक शिक्षा देकर कन्याओं के दिमाग़ और शरीर पर अनुचित परिणाम उत्पन्न करने के वे पक्के विरोधी थे।

अलबत्ता प्रौढ़ विवाह-संबंधी सरदार साहब के विचार बड़ों-बड़ों को मात करनेवाले थे। विमला की अवस्था भी १४-१५ वर्ष की हो गई थी, किंतु अभी तक उसके विवाह के संबंध में सरदार साहब के मुँह से एक अक्षर भी न निकला था। परंतु जहाँ तक समझ पहुँच सकती है, यह उनके प्रेम की अधिकता का ही परिणाम होना चाहिए; न कि सुधारक मत का! विमला के सिवा उनका कोई भी प्रेम-पात्र न था। कदाचित् इसी कारण उन्हें विचार होता हो कि यह विवाह जितने दिन आगे बढ़ सके, उतना ही ठीक है। तथापि अब उन्हें विदित होने लगा था कि इस प्रकार विमला को अविवाहित रखने से लोग हमारा नाम रखने लगेंगे। परंतु प्रेम की अधिकता से विवाह वैशाख का निश्चित कर, उसके निकल जाने पर अगहन में तो अवश्य ही कर देना चाहिए इस प्रकार वे चित्त को धैर्य बँधा रहे थे।

कुछ वर्ष पूर्व मनोहरलाल भी इसी प्रकार सरदार साहब को बड़े प्रिय थे। इन्हें वे अपने पुत्र की भाँति समझते थे, किंतु उनके आचार-शास्त्र-संबंधी कुछ नियम मनोहरलाल को पसंद न थे। वे नियम उन्हें एकमार्गी, संकुचित और अनुचित जान पड़ते थे। इस कारण मनोहरलाल की आयुष्य-क्रम के आरंभ अर्थात् बीसवें वर्ष में ही दोनों के बीच झगड़ा हो गया।

सरदार साहब नहीं चाहते थे कि मनोहरलाल उनकी संपत्ति पर देख-रेख रक्खे। अथवा उनके सार्वजनिक दानों का निरीक्षण करे और उनके ग्रंथ-संग्रहरूपी प्रशंसनीय उद्योग में सहायता दें। सारांश, वे किसी कारभारी की हैसियत से मनोहरलाल को अपने पास न रख सके। इस प्रकार सुख-संपत्ति-युक्त और कई प्रकार के अधिकारोंवाली नौकरी प्रत्येक युवक के मन में मोह उत्पन्न करा सकती थी, परंतु मनोहरलाल उन साधारण युवकों में से न थे, वरन् वे इसकी अपेक्षा अधिक योग्यतावाले, और उपयुक्त व्यवसायों में अपना जीवन बिताने अथवा अन्य लोगों पर अपने निर्वाह का आधार रखने की अपेक्षा स्वावलंबन द्वारा चरितार्थ चलानेवाले युवक थे। यही कारण था कि पुस्तकालय को ग्रंथों से ठसाठस भर देने अथवा उस पुस्तक-समूह की ओर केवल कौतुक की दृष्टि से देखते रहने से ही मनुष्य के कर्तव्य की इतिश्री हो जाती है इस सिद्धांत के वे सर्वथैव विरोधी थे।

मनोहरलाल की महत्त्वाकांक्षा प्रशंसनीय थी, किंतु सरदार साहब को उस आकांक्षा के लिये केवल कौतुक करना ही इष्ट था ; क्योंकि उनके समान संकीर्ण प्रकृतिवाले मनुष्य के लिये ऐसी आशाएँ व्यर्थ ही थीं। वे चाहते थे कि मेरे पास रहनेवाले को मेरी इच्छा और नियमित सिद्धांतों के अनुसार ही चलना चाहिए। स्वच्छंदता का आचरण उनके नियम-विरुद्ध बात थी। इसी कारण वे समझते थे कि मनोहरलाल को मेरे विचार पसंद नहीं हैं। "स्वच्छंदतापूर्वक मैं

आपके पास रहने को तैयार नहीं। ऐसी ही यदि आपकी समझ हो, तो वह केवल भ्रमपूर्ण है। समाज का संकष्ट निवारण करने-संबंधी आपके समान मेरे भी विचार हैं। परंतु आप विशिष्ट दुःखों की ओर ही ध्यान देते हैं। समाज के भिन्न-भिन्न श्रेणी के लोगों के साथ रहकर उनकी आदतें, उनके व्यसन, उनकी प्रवृत्ति आदि का विचारपूर्वक निरीक्षण और मनन करके उनके समस्त दुःखों का कारण खोज उसे दूर करने में ही अपना जीवन लगा देना मेरा एक-मात्र उद्देश्य है। और इसी कारण आपका संकुचित आयुष्य-क्रम मुझे पसंद नहीं है।"

इस प्रकार से विश्वास दिलाने और उन्हें समझाने के लिये मनोहरलाल ने बहुत कुछ प्रयत्न किया, किंतु वह सब व्यर्थ हुआ।

अंत को दोनों के बीच खटा-पटी हो ही तो गई। काका साहब की इच्छा के विरुद्ध जाना मानो उनकी अतुल संपत्ति को हाथों से खोने के समान ही था, परंतु कर्तव्य के सम्मुख मनोहरलाल ने उस द्रव्य की कुछ पर्वाह न की। वे तो समझते थे कि अपने हतभाग्य भाइयों की दुःस्थिति के कारण खोजकर उन्हें दूर करने का यत्न करना, काकाजी की संपत्ति से हज़ारगुना अच्छा है।

सारांश, वे काकाजी को अंतिम प्रणाम कर घर से चल दिए। उस समय उनके पास एक फूटी कौड़ी भी न थी।

ज्यों-त्यों कर मनोहरलाल बंबई आ पहुँचे और दो वर्ष तक ग्रांटरोड, गोलपीठा, कामाठीपुरा आदि मुहल्लों में रहकर उन्होंने समाज के निकृष्ट श्रेणीवाले लोगों में मिलकर उनके आयुष्य-क्रम का निरीक्षण किया, और अपने अनुभव को प्रसिद्ध-प्रसिद्ध समाचार-पत्रों द्वारा प्रकाशित करवाकर उनसे मिलनेवाले पुरस्कार पर ज्यों-त्यों निर्वाह किया। इसके बाद उन्होंने मदकख़ाने, चंडूख़ाने, जुआरियों के अड्डे, सट्टेबाज़ार आदि स्थानों में घूमकर वहाँ की वस्तुस्थिति का निरीक्षण किया।

इससे कोई यह न समझे कि चंडूख़ाने या जुआरियों के अड्डे में जाने की उन्हें रुचि होगी। वे तो यह जानना चाहते थे कि ये लोग इन व्यवसायों में क्यों फस जाते हैं; अथवा इन व्यवसायों में ऐसी क्या मोहिनी शक्ति है जो इन्हें फसा लेती है, और इन सबका मूल कारण क्या है ? इन्हीं सब बातों की खोज में वे जहाँ-तहाँ उन लोगों में मिलकर अपनी इष्ट-सिद्धि का प्रयत्न करते और साथ ही लोगों की संपत्ति और नीति का ह्रास न होते हुए उतने ही मनोरंजक साधनों की प्राप्ति का भी यत्न करते थे।

मनोहरलाल चंडूख़ाने में जाते हैं, जुआरियों के अड्डे में भी उनका प्रवेश और आवागमन होता है। ये बातें जब सरदार साहब के कानों तक पहुँचीं, तब वे बड़े दुखी हुए और कहने लगे--"मैं समझ ही गया था कि यह छोकरा बिगड़ जायगा, सही बात हुई। मेरे पास भी वह इसी कारण न रहा। बड़े लोगों का कहना न मानने का यही फल मिलना चाहिए। पंडित बनकर मुझे उपदेश देता था, अब देखता हूँ, कैसे-कैसे कर्म-फल भोगता है।" ये उद्गार कई बार उनके मुख से निकला करते। इतने ही में जब मनोहरलाल के एक कन्या-पाठ-शाला की अध्यापिका से विवाह हो जाने की बात उनके कानों तक पहुँची। अब तो उनकी क्रोध-ज्वाला भड़क उठी। उसी दिन से उन्होंने मनोहरलाल का नाम तक लेना छोड़ दिया, और समझ लिया कि उसका भाग्य फूट गया है।

इस घटना को आज पचास वर्ष हो गए हैं। इस अवधि में मनोहर-लाल जीवित है या मर गया, इस बात की भी सरदार साहब ने ख़बर न ली। उनके मतानुसार मनोहरलाल कुटुंब के लिये कलंक रूप थे, और इसी अपराध के कारण उनके 'पिनलकोड' में दया का नाम तक न था।

एक दिन सबेरे काका सरदार साहब अपनी लाइब्रेरी में बैठे हुए

तर्क-वाचस्पति के 'शब्दकल्पद्रुम' के पृष्ठ उलट रहे थे कि इतने ही में उनके कारभारी ने एक स्त्री के मिलने आने की ख़बर सुनाई। स्त्री का शब्द सुनते ही वे झुँझला उठे और कहने लगे—"स्त्री-जाति का मुझसे भेंट करने का क्या प्रयोजन है ?"

उन्हें पुस्तकावलोकन के समय दूसरों से मिलने की बड़ी चिढ़ थी। क्षणार्द्ध में ही कुछ शांत होकर वे फिर पूछने लगे—"अच्छा, यह तो बतलाओ, वह स्त्री है कौन ? और कहाँ से आई है ?"

कारभारी—"आपके मनोहरलाल की स्त्री है।"

सरदार०—"क्या मनोहरा की स्त्री है ! वह भी वैसी ही सुथरी हुई होगी। उसका नख़रा आदि सब विचित्र ही होगा। अजी ! भली हो भी कहाँ से !! विवाह होने से पहले तो वह एक कन्या-पाठशाला में नौकर थी। क्या समझे भानुप्रसाद ? मैं यह नहीं कहता कि कन्याओं को शिक्षा ही न दी जाय ! देखो न, हमारी विमला को भी तो शिक्षा दी गई है। परंतु पाठशाला में, चाहे वह लड़कों की हो या लड़कियों की, नौकरी करने का अर्थ ही क्या है ? ऐसी अपनी कमाई पर रहनेवाली लड़कियाँ सुशील हो भी कैसे सकती हैं। मुझे तो इस विषय में विचार करते-करते निश्चय हो गया है। यही नहीं, बरन् पूना और बंबई की पाठशालाओं में पढ़नेवाली लड़कियों की वे फ़ैंसी कुर्तियाँ, वह बालों को सँवारकर पट्टी पाड़ना, कपाल पर कुंकुम की बारीक-सी बिंदी, खटके से खुलनेवाली उनकी नफ़ीस छतरी, इन सब रंग-ढंग को देखकर तो मन में दृढ़ निश्चय होता है कि स्त्री-शिक्षा की यहाँ बिलकुल ही आवश्यकता नहीं है। कभी-कभी तो मेरी यह दशा हो जाती है कि यह स्त्री-शिक्षा का प्रपंच ही हमारी समाज-व्यवस्था को किसी दिन रसातल को न पहुँचा दे। अस्तु, इस झगड़े को छोड़ो। अच्छा, कहो तो सही, वह क्योंकर यहाँ आई है ? यदि पैसे-कौड़ी की इच्छा से आई हो, तो यहाँ से एक पाई

भी न मिलेगी । अजी ! मुझे तो उसे देखने तक की इच्छा नही है, तुम ठडे-ठंडे उसे वहीं से बिदा कर दो ।"

भानुप्रसाद ने मन-ही-मन कहा—"यह बात तो मैं उसे पहले ही कह चुका हूँ ।"

सरदार०—"कुछ भी हो, परंतु मुझे उससे मिलने की बिलकुल इच्छा नही है ।"

भानुप्रसाद—"एक-दो बार हो क्या पचास बार कहने पर भी वह नहीं मानती ।"

सरदार०—( आग-बबूला होकर ) "तो ?"

भानुप्रसाद—"वह आपसे मिलकर ही जायगी ।"

ये शब्द सरदार साहब के कानों तक पहुँच भी न पाए थे कि इतने में द्वार खोलकर लक्ष्मी वहाँ आ उपस्थित हुई । बूढ़े बाबा चकित रह गए और बेपर्वाही दिखाते हुए पूछा—"तू कौन है ?"

लक्ष्मी०—"आपकी ही कोई हूँ और यदि मानें तो पुत्रवधू ।"

सरदार०—"जो स्कूल में मास्टरिन थी वही है न तू ?"

लक्ष्मी०—हाँ ! मेरे पिता का देहांत हो जाने के बाद अवश्य कुछ दिन मैंने स्कूल में नौकरी की थी, किंतु विवाह होते ही मैंने उसे छोड़ दिया । निरुपाय होकर पेट पालने के लिये मुझे ऐसा करना पड़ा ।"

सरदार०—"तो अब उसे छोड़कर यहाँ क्यों आई है ?"

लक्ष्मी०—"वे बीमार हैं, मज्जातंतु की क्षीणता के कारण चार दिन पहले एकदम मूर्च्छा आने से चारपाई पर पड़े हैं । बिना हवा बदले तबीयत नहीं सुधर सकती । यह बात डॉक्टर ने भी कही है । पर..."

सरदार०—"क्या वह बीमार है ? उसे रोगी होने को क्या हुआ । अभी तो उसे पूरे पचास वर्ष भी नहीं हुए । मैं तो आज अस्सी को भी छेक गया हूँ, परंतु आज तक सिर-दर्द का नाम भी नहीं जानता । सुना बाई ! आचरण में नियमितता और दृढ़ता होनी चाहिए । फिर

क्या मजाल है कि तबियत बिगड़ जाय ! परंतु मदिरापान, जुआ खेलना, चंडूख़ाने में जाना तथा इसी प्रकार के व्यसनों में पड़ जाने पर बेचारी प्रकृति का क्या दोष है ?"

लक्ष्मी०—"क्षमा कीजिए। आप भूल कर रहे हैं, जो ऐसा कहते हैं......।" इतना कहते ही उसके नेत्रों से अश्रुधारा बह चली और वह मनोहरलाल के आचरण-संबंधी सरदार साहब के वाक्य सहन न कर सकी। उसने नम्र हो कहा—"आपको उनके स्वभाव की पूरी परीक्षा नहीं है, अन्यथा आप भूलकर भी ऐसी बात मुँह से न निकालते। विवाह हुए आज २४-२५ वर्ष हो गए हैं। परंतु मुझे तो आज तक उन्होंने कभी कटु वाक्य नहीं कहे और रामेश्वर को तो वे जीवन-मूल समझते हैं।"

सरदार०—"क्या मनोहरा को पुत्र भी हो गया है ?"

लक्ष्मी०—"हाँ, बाईस वर्ष का एक आपका पोता भी है।"

सरदार०—"तो वह नौकरी करके तुम्हारी सहायता क्यों नहीं करता ? क्या वह भी अपने बाप की ही तरह दीवाना है ?"

लक्ष्मी०—"रामेश्वर अभी शिक्षा पा रहा। इस वर्ष वह रसायन-शास्त्र को लेकर एम्० ए० की परीक्षा में बैठेगा। प्रोफ़ेसर गज्जर की देख-रेख में उसकी पढ़ाई हो रही है। उस पर प्रोफ़ेसर साहब का बड़ा प्रेम है, और उन्हीं के ख़र्चे से वह पढ़ भी रहा है। पास हो जाने पर वह उन्हीं की सहायता से एक मोमबत्ती का कारख़ाना भी खोलनेवाला है। नौकरी की अपेक्षा देशी उद्योगों द्वारा स्वदेश की दशा सुधारना ही उसका मुख्य ध्येय है।"

सरदार०—( हँसकर ) "तब तो तुम्हारे रामू का आदर्श बड़ा प्रशंसनीय है।"

लक्ष्मी०—"और यदि ईश्वर की कृपा हुई, तो वह आपके वंश की कीर्ति को भी अजरामर बना देगा।"

सरदार०—( हँसी करके उपेक्षा से ) "क्या दिए लगाता है, सो देख लूँगा।"

लक्ष्मी०—"परंतु आज वह हमें सहायता नहीं पहुँचा सकता; क्योंकि इन दिनों वह यहाँ नहीं है। प्रोफ़ेसर बसु के गवेषणालय में कुछ प्रयोग सीखने के लिये कलकत्ते गया हुआ है। इसीलिये आपकी सेवा में उपस्थित हुई हूँ कि ... ... ...।'

सरदार०—( बीच में ही ) "मैं एक पाई भी न दूँगा; क्योंकि वह स्वतंत्र होकर मुझसे जुदा हो गया, और नए-नए व्यसनों का दास बन गया है। इसीलिये जब तक वह इन दुर्गुणों को त्याग नहीं देता, मैं कौड़ी भी नहीं दूँगा।"

लक्ष्मी०—"आप विश्वास रखिए, उन्होंने किसी भी प्रकार का व्यसन स्वीकार नहीं किया है, वरन् हमारे लिये कितना श्रम ...।"

आगे उससे न बोला गया और मनोहरलाल के अपरिमित श्रम का चित्रपट नेत्रों के सामने आ उपस्थित होने से उसका गला भर आया; परंतु वृद्ध के मन पर कुछ भी प्रभाव न पड़ा। कुछ ही देर के बाद वह फिर कहने लगे—"मैं सब जानता हूँ कि वह विलक्षण बुद्धिमान् है, लिखने की हस्तलाघवता भी उसकी अच्छी है। परंतु व्यर्थ के झगड़ों में फँसकर उसने अपनी बुद्धिमत्ता का दुरुपयोग किया। सहस्ररजनी-चरित्र-जैसी निरर्थक कहानियाँ लिखने के सिवा उसके हाथ से कोई बड़ा काम न हुआ। मुझे तो दृढ़ आशा थी कि वह एक उत्तम उपन्यासकार होगा। परंतु इन व्यसनों के द्वारा उसने अपना नाश कर डाला। मुझे उसका मुँह देखने तक की इच्छा नहीं है, और न मैं कुछ सहायता ही दूँगा। बस, तू भी यहाँ से चलती बन।"

लक्ष्मी०—"ख़ाली हाथ जाने के लिये मैं यहाँ नहीं आई हूँ। फिर भी मैं अपने लिये नहीं, वरन् उनके औषधोपचार के लिये ... ...।"

बेचारी लक्ष्मीबाई से आगे न बोला गया; किंतु सरदार साहब

बड़े उस्ताद थे। वे फिर डपटकर कहने लगे—"यहाँ पैसे का नाम तक न लेना।" बेचारी निराश होकर घर को लौट चली।

ले-देकर लक्ष्मीबाई के पास एक सोने की अँगूठी बची थी; उसे भी गिरवी रखकर पाँच रुपए मिले थे, जो पूना-बंबई के आने-जाने में ही उठ गए।

हवा-पानी अवश्य बदलना चाहिए, और खाने-पीने की भी पूरी-पूरी व्यवस्था होनी उचित है। तभी इनकी तबियत सुधर सकेगी। यह बात डॉक्टर साहब ने अच्छी तरह समझा दी थी, किंतु बेचारी लक्ष्मी करती क्या? उसके पास तो इस समय ज़हर खाने को भी पैसा न था। फिर भी वह विचारने लगी—"यह काम कैसे होगा? क्या रामेश्वर को बुलवा लूँ। परंतु वह भी आकर क्या कर लेगा और कहाँ से सब व्यवस्था कर लेगा। इसके सिवा कलकत्ते से यहाँ आने में किराए के ही २०-२५ रुपए लग जायँगे।"

ज्यों-त्योंकर लक्ष्मी घर पहुँची। उस समय मनोहरलाल को कुछ शांति-पूर्वक नींद आ गई थी। इस कारण उसे कुछ संतोष हुआ, परंतु साथ ही कल क्या होगा, यह प्रश्न फिर उसे कोसने लगा। बड़ी देर विचार करने के बाद उसे निश्चय हो गया कि इस प्रसंग पर सिवा ईश्वर के कोई सहायता नहीं है। तत्काल ही उसने शुद्धांतःकरण से ईश्वर का स्मरण किया और सौभाग्य से उसकी प्रार्थना पर ईश्वर ने ध्यान भी दिया।

---

# षष्ठ परिच्छेद

## बंडल मिल गया

कुछ काम न होने से गोविंद सहज ही ठाकुरद्वार के रास्ते पर टहल रहा था कि इतने ही में एक तरफ़ कुछ लोगों को खड़ा देखकर कारण जानने के लिये वह वहाँ पहुँचा, और लोगों से पूछा, तो ज्ञात हुआ कि एक स्त्री को मूर्च्छा आ गई है। उसने कहा—"बस, इतनी ही सी बात थी।" इससे कोई यह न समझ ले कि गोविंद कठोर दिल का आदमी था। सिर उठाकर भीड़ में घुस, मुख्य घटना देखे विना वह चुप रहनेवाला नहीं था, परंतु इसी बीच उसका ध्यान दूसरी ओर आकर्षित हुआ।

एक छोकरे को गटर में से एक काग़ज़ का पुलिंदा उठाते हुए उसने देखा। छोकरा बंडल उठाते ही भाग चला। गोविंद भी कब ठहर सकता था। उसने छोकरे का पीछा किया। वह जानना चाहता था कि बंडल में क्या है?

छोकरा गली-कूचों में होता हुआ भागा जाता था, परंतु गोविंद भी कुछ कम न था। वह भी बराबर उसके पीछे भाग रहा था। अंत को चौपाटी पर पहुँच उसने छोकरे को पकड़ ही लिया, और उससे वह बंडल छीनकर खोला, तो उसमें और कुछ नहीं, केवल एक हस्त-लिखित पुस्तक थी। उसे बड़ी निराशा हुई। एक बार बंडल को वहीं फेक देने का विचार किया, किंतु फिर यह सोचकर कि इसे एक बार रामनाथ को दिखाना चाहिए। वे जो कुछ कहेंगे, वही करना ठीक होगा। बंडल को लेकर वह माधवाश्रम की ओर चल दिया।

रामनाथ बंबई के एक सुप्रसिद्ध डिटेक्टिव हैं, किंतु सरकारी नौकर

नहीं। आप प्राइवेट रूप से यह धंधा करते हैं। गोविंद इन्हीं का मुख्य सहायक है। वह भी पूरा-पूरा चालाक और करामाती प्राणी है।

रामनाथ जब कभी बंबई में रहते हैं, तो बहुधा माधवाश्रम में ही ठहरा करते हैं; क्योंकि उन्हें आश्रम की व्यवस्था बड़ी पसंद है।

जिस समय गोविंद आया, तब रामनाथ सिगरेट सुलगाने के लिये दियासलाई जलाने को काड़ी पेटी पर घिस रहे थे। उन्हें देख गोविंद ने कहा—"व्यर्थ ही दियासलाई न बिगाड़िए, जलाने को बहुत-सी रद्दी लाया हूँ।"

रामनाथ—"देखूँ कैसी रद्दी है?"

गोविंद—"ऐसी-वैसी नहीं, ख़ास मैंसक्रेप्ट है। क्यों, ठीक अँगरेज़ी है न?"

रामनाथ—"मुझे तेरे अँगरेज़ी पांडित्य की आवश्यकता नहीं है, देखूँ तो उसमें क्या वस्तु है?"

गोविंद—"आज गंधर्व-नाटक-मंडली का "हिंदी-मानापमान" का खेल है, उसके लिये अगर रिज़र्व कुर्सी का टिकट दिला सकते हो, तो ख़ुशी से इस बंडल को ले सकते हो। अच्छा लो, देख लो।"

रामनाथ ने बंडल खोलकर देखा, तो उसमें एक हस्त-लिखित पुस्तक थी। ऊपर सुंदर अक्षरों में 'जब सूर्योदय होगा' लेखक 'सुदर्शन' इस प्रकार नामोल्लेख था। वे मन-ही-मन सोचने लगे। इस ग्रंथकार का नाम तो मैंने आज तक नहीं सुना। परंतु यह ग्रंथ बड़ा मार्मिक जान पड़ता है। विषय-प्रवेश ही कितना बढ़िया है। ग्रंथ.........।

गोविंद—( बीच ही में ) "यह तो सब ठीक है, परंतु मेरे लिये टिकिट?"

रामनाथ—"पैसे के लिये तेरा सदा का त्रास है, बैंक-बुक तो भरा हुआ है, और अब पैसे किस काम के लिये चाहिए?"

गोविंद—"अजी अभी तो ४-५ पेज ख़ाली हैं। देखो चार तो टाइटिल के पेज और १ समाप्ति का, क्यों ठीक है न? परंतु वह

पोस्टमास्टर बड़ा ज़िद्दी है। कहता है, इस साल ७५०) रु० हो गए, अब ८ महीने और कुछ न जमा करो।"

रामनाथ—"अपनी बकबक बंदकर, ले ये दो रुपए और चलता बन। अब दो-चार घंटे सिर पचाने को इधर न आना। मैं अब शांति-पूर्वक इस पुस्तक को पढ़ूँगा।"

गोविंद—"यह अच्छी युक्ति है। अब मैं रोज़ एक बंडल लाकर दिया करूँगा। आज से मेरा दो रुपए रोज़ का हिसाब बँध गया।" यों कहकर वह हँसता हुआ चल दिया।

चार घंटे बाद गोविंद लौट आया, उस समय भी रामनाथ पुस्तक पढ़ रहे थे। कुछ देर बाद उसे टेबुल पर रख रामनाथ पूछने लगे—

"गोविंद! तुझे यह बंडल कहाँ से मिला है? झटपट बतला?"

गोविंद—"इतनी उत्सुकता क्यों? मुझे भी तो मालूम हो जाय, उसमें क्या है।"

रामनाथ—"अरे कहता क्या है! उत्सुकता को क्या पूछता है? यह ग्रंथ जिसने लिखा है, उसे द्रव्य चाहे जितना मिले, पर यह तो निश्चय है कि उसका नाम संसार में अमर हो जायगा।"

गोविंद—"पर हमें उसके नाम से क्या करना है?"

रामनाथ—"अधिक गड़बड़ की आवश्यकता नहीं। तू कुछ समझता भी है? मैंने तो आज तक ऐसी एक भी पुस्तक नहीं पढ़ी। समाज में पिछड़े हुए लोगों की स्थिति का चित्र इसमें बड़ी ख़ूबी से खींचा गया है। अच्छा, तू झटपट बतला तो, तुझे यह पुस्तक कहाँ से मिली है?

रामनाथ के इस भाषण का गोविंद के चित्त पर अच्छा प्रभाव पड़ा, और वह समझ गया कि मुझे एक उत्तम ग्रंथ मिला है। उसने रामनाथ को सारी घटना यथातथ्य कह सुनाई, जिसे सुन रामनाथ ने कहा—"तब तू यह नहीं बतला सकता कि यह बंडल किसका है?"

गोविंद—"शायद जिसे मूर्च्छा आई थी, उस स्त्री का हो।"

रामनाथ—"ये अक्षर तो स्त्री के हाथ के नहीं जान पड़ते। परंतु संभव है कि मूर्च्छा आने के समय उसके हाथ से यह गिर पड़ी हो। अस्तु, अच्छा यह तो बतला कि उस स्त्री की फिर क्या व्यवस्था हुई ?"

गोविंद—"उसकी क्या दशा हुई, यह किसे ख़बर है। उसके तो चारों ओर बड़ी भीड़ थी। मैं चौकसी करने ही वाला था कि इतने में मेरा ध्यान बंडल की ओर गया और मैं अपने काम में लग गया। क्यों, पुस्तक बड़ी बढ़िया है! ऐसी पुस्तक को चोर के हाथ से बचाने की बहादुरी के लिये सरकार और समाज की ओर से मेरी बड़ी-बड़ी पदवियों और पदकों द्वारा सम्मान होने की आशा है।"

गोविंद के विनोद की ओर उनका बिलकुल ही ध्यान न था। वे तो उस बंडल और पुस्तक की ओर ही दत्तचित्त हो रहे थे। कुछ देर विचारकर उन्होंने कहा—

"मैं समझता हूँ, उस स्त्री के हाथ से ही यह पुस्तक गिरी है। उसका पता लगाकर पुस्तक लौटा देनी चाहिए। पुस्तक बड़े महत्त्व की है। तुझे बाहर जाकर पता लगाना चाहिए। अच्छा, तू झटपट पोशाक बदलकर आ तो! फिर मैं तुझे आगे का काम बतलाता हूँ।"

रामनाथ ने एक नोटपेपर लिया और उस पर इस प्रकार लिखा—
"ठाकुरद्वार के नाके पर 'जब सूर्योदय होगा'-नामक एक हस्त-लिखित पुस्तक मिली है। लेखक ने अपना नाम 'सुदर्शन' लिखा है। लेखक को 'रामनाथ' से आकर माधवाश्रम में मिलना चाहिए। विश्वास हो जाने पर पुस्तक लौटा दी जायगी।" रामनाथ

गोविंद, तू इसकी कॉपी करके सभी हिंदी, मराठी और गुजराती के समाचार-पत्रों में छापने को दे आ।

गोविंद—"आपको तो इसकी बड़ी फ़िक्र-सी लग रही है।"

रामनाथ—"अरे ! मुझे तो जो कुछ है, सो है, परंतु उस बेचारे ग्रंथकार की क्या दशा होती होगी। यदि यह ग्रंथ खो जाता, तो उस बेचारे की सारी मिहनत व्यर्थ ही जाती। बेचारे की कितनी हानि हुई होती। इस पुस्तक का प्रत्येक प्रसंग और एक-एक वाक्य स्वानुभव से लिखा हुआ जान पड़ता है। अस्तु, अब तू शीघ्रता से जाकर इसे सब समाचार-पत्रों में छपने को दे आ।"

यथावश्यक प्रतियाँ तैयारकर गोविंद सब समाचार-पत्रों में छपने दे आया। उस दिन रामनाथ को पुस्तक के सिवा और कुछ न सूझा। रात-भर जगकर उन्होंने फिर एक बार उस पुस्तक को पढ़ा। पुस्तक का विषय-प्रतिपादन ही इतना आकर्षक था कि विना उसे पूरा किए उसे हाथ से अलग करना असंभव बात थी। रामनाथ को उसकी अपूर्णता पर पूरा खेद हो रहा था। वे विचारने लगे कि मेरे विज्ञापन को पढ़कर कल वह ग्रंथकार अवश्य मेरे पास आवेगा, और मैं बड़े आनंद मे उससे बातें करूँगा। मैं उससे इसे पूर्ण करने का आग्रह करूँगा। दूसरे दिन शाम को छ. बजे तक उन्होंने ग्रंथकर्ता की प्रतीक्षा की, किंतु उनकी उत्सुकता दूर न हुई और निराश हो वे बाहर घूमने चल दिए।

मोहन बिल्डिंग के पासवाले रास्ते को रामनाथ पार भी न कर पाए थे कि उन्हें कुत्ते के भूँकने की आवाज़ सुनाई दी। उन्होंने मन में सोचा, मोती किस पर भूँकता है। देखा तो पंप के पास एक आदमी खड़ा था, वह रामनाथ के पास आकर कहने लगा—"जान पड़ता है कि कुत्ता आप[illegible]है। जिसे-तिसे देखकर भूँकने लगता है। कहीं पागल तो नहीं है ?"

रामनाथ के बाहर निकलते समय वह मनुष्य पंप के पास खड़ा था, किंतु एक तो सायंकाल का समय, दूसरे रामनाथ के मस्तिष्क में उस पुस्तक के सिवा दूसरी बात ही नहीं समा सकती थी, इसी

कारण उनका ध्यान उस ओर न गया। उन्होंने मोती के गले में ज़ंजीर डाल दी। मोती भी रामनाथ ही की तरह बड़ा चतुर था। वह साधारण मनुष्य को देखकर नहीं भूँकता था। उसे चोर, बदमाश की गंध-सी आती थी। उसका तत्कालीन ज्ञान वास्तव में बड़ा प्रशंसनीय था। कुत्ते को सँभालकर रामनाथ ने गंभीरता से कहा—"मेरा कुत्ता पागल नहीं है। इसे आप ख़ूब समझ लीजिए कि सभ्य मनुष्यों को देखकर वह कभी नहीं भूँकता। तुम्हारे इस विलक्षण कोट को देखकर उसने ऐसा किया है।" वह मनुष्य अपना जंगी ओवर कोट सँभालते हुए कहने लगा—"अगर यह पागल नहीं भी है, तो भी प्रत्येक मनुष्य को देखकर इसके भूँकने का इलाज करना पड़ेगा।"

रामनाथ ने एक बार फिर उसकी ओर देखा, और वे मोती को ले घूमने चले गए।

जब रामनाथ मोती को लेकर चौपाटी की ओर पलट पड़े, तब उस मनुष्य के चित्त को कुछ संतोष हुआ, और वह स्वगत कहने लगा—"यही रामनाथ का मोती कुत्ता है। इस मार्ग में ऐसा भयंकर कुत्ता दूसरा नहीं है। परंतु अब क्या डर है, वह भी तो अपने स्वामी के साथ बाहर चला गया है। अब अपना काम बड़ी सरलता से बन सकेगा, यह बला अच्छी दूर हुई।"

आश्रम के बाहर इधर-उधर २-४ मिनट टहलकर वह मनुष्य रामनाथ के कमरे में बेखटके जा पहुँचा।

इधर रामनाथ चौपाटी पर इधर-उधर घूम रहे थे। सायंकाल के समय समुद्र के किनारे चौपाटी पर अनेक रमणियों का बेंचों पर बैठकर हवा खाना, और रंग-बिरंगे वाहन-गाड़ी, घोड़े, मोटर, बग्घियों के साथ ही जनता की इतनी भीड़ होती है कि वह शोभा देखते ही बनती है, और मनुष्य का सारे दिन का श्रम दूर होकर चित्त प्रफुल्लित हो उठता है। परंतु इतने सब मनोरंजन के साधन रहने पर

भी रामनाथ को 'सुदर्शन' की पुस्तक के सिवा कुछ न सूझता था, उसे फिर पढ़ने के लिये वे लौट पड़े।

जब तक रामनाथ बाहर रहते, तब तक गोविंद द्वार पर ही बैठकर उनकी प्रतीक्षा किया करता, किंतु आज जब रामनाथ आए, वह द्वार पर नहीं था। रामनाथ बड़े आश्चर्य में पड़ गए और उन्होंने फुर्ती से अपने तीनों कमरे ढूँढ डाले, परंतु गोविंद का पता न लगा। उन्होंने ज़ोर-ज़ोर से गोविंद को पुकारना शुरू किया, बड़ी देर के बाद उन्हें एक अस्पष्ट और किसी बंद स्थान से आती हुई आवाज़ सुनाई दी। रामनाथ बड़े व्याकुल हुए, किंतु उन्हें इस विषय में कुछ न सूझ पड़ा। उनकी बैठकवाले कमरे के कोने में रक्खी हुई कपड़े की संदूक़ में से वह शब्द सुनाई देता था। एक बार फिर वह आवाज़ सुनाई दी। इस बार रामनाथ बहुत घबरा गए, क्योंकि संदूक़ बंद थी। जाते समय नियमानुसार चाबी का गुच्छा सामने की खूँटी पर टाँग दिया था। किंतु अब वह भी वहाँ पर न था।

रामनाथ तो पक्के डिटेक्टिव थे। उनके पास कई प्रकार की चाबियाँ और छोटे-मोटे शस्त्रास्त्र थे। उन्होंने चट से अपने संग्रह में की एक चाबी से वह ताला खोलकर देखा, तो संदूक़ में उन्हें एक गठरी में कुछ बँधा हुआ दिखाई दिया। रामनाथ चौंक गए, और तत्काल ही उन्होंने गठरी को खोलकर देखा, तो हाथ पाँव से जकड़कर बँधा हुआ गोविंद उन्हें दिखाई दिया। बेचारे के मुँह पर लंबी टोपी पहनाकर गले में रस्सी से बाँध दिया था। वायु के अभाव से उसका प्राण व्याकुल हो रहा था, और मुँह से एक शब्द भी न निकल सकता था। यदि रामनाथ थोड़ी ही देर कर आते, तो उनका गोविंद जीवित न मिलता। बेचारे के सिर में पीछे की ओर एक घुम्मा हो गया था, जो अपने एक बड़ी-सी चोट खाकर उत्पन्न होने की साक्षी दे रहा था।

---

# सप्तम परिच्छेद

## बंडल फिर गुम हो गया

"आपके समय पर आ जाने से ही मेरे प्राण बचे। अन्यथा आज तो समाप्ति का ही दिन आ गया था।" इस प्रकार गोविंद ने आँखें खोल काँपते हुए कहा।

रामनाथ—"यह मामला क्या है गोविंद! क्या यहाँ कोई आया था?"

गोविंद—"और कौन आता, वही आपका 'सुदर्शन'।"

रामनाथ—"क्या उस पुस्तक का लेखक?"

गोविंद—"हाँ, वही। आप तो कहते थे कि वह बड़ा उद्भट लेखक होगा, बात यथार्थ हुई। सचमुच ही वह अक़ल का पुतला था।"

रामनाथ—"इस पुस्तक का लेखक, और वह ऐसा काम करे। यह कभी संभव नहीं; क्योंकि उस पुस्तक को पाने के बदले उसे हमारा अहसान मानना चाहिए था। मैं तो समझता हूँ, वह 'सुदर्शन' नहीं, कोई ठग था।"

गोविंद—"क्या बड़े-बड़े ग्रंथकार इसी प्रकार के हुआ करते हैं?"

रामनाथ—"तू भले ही कुछ कहता रह, परंतु उस पुस्तक का लेखक इस प्रकार के उद्भट स्वभाव का हो, यह मैं नहीं मान सकता। जो कुछ घटना हुई है, उसे साफ़-साफ़ कह सुना कि जिससे उसके संबंध में तर्क बाँधा जा सके। क्या तुझे विश्वास है कि वह सुदर्शन ही था?"

गोविंद—"वह कहता तो यही था, किंतु मुझे उस पर संदेह हुआ। वह केवल लट्ठनिरंजन ही था। छः फ़ुट से भी अधिक

उँचाई का वह पूरा और पक्का जवान था। आपके जाने की तो वह मानो प्रतीक्षा कर ही रहा था, क्योंकि आपके यहाँ से जाते ही पाँच मिनट बाद वह आ पहुँचा और कहने लगा—"मैं उस हस्त-लिखित प्रति के लिये आया हूँ। विज्ञापन में लिखे हुए स्थान पर ही वह गिर गई थी।" तब मैंने उससे नम्रता-पूर्वक पूछा—"क्या आप ही 'सुदर्शन' हैं?" उत्तर में उसने कहा—"हाँ, मैं अपने सभी ग्रंथ इसी नाम से प्रकाशित करता हूँ।" तब मैंने फिर प्रश्न किया कि "आपका ख़ास नाम क्या है?" वह एकदम चौंककर कहने लगा—"मेरे नाम से तुम्हें क्या प्रयोजन है? मुझे अपनी पुस्तक दीजिए, मुझे ज़रा जल्दी है।" उसकी बात सुन मैंने सहज ही हँसते हुए पूछा—"आपको इस प्रकार चौंकने का क्या कारण? बिना इस बात का विश्वास हुए कि सुदर्शन आप ही हैं, वह महत्त्व की पुस्तक नहीं दी जा सकती। इस समय राम नाथ भी बाहर गए हुए हैं, आप सबेरे आइए। वे उस समय यहीं पर होते हैं, उनसे पूछकर अपनी पुस्तक ले जाइए।" किंतु मेरी बात पूरी होने से पूर्व ही वह बड़ा गरम हो उठा और मुझ पर झपटकर कहने लगा—"क्या बार-बार आने के लिये मुझे एक यही काम है? मुझे पुस्तक अभी ही मिलनी चाहिए। यह एक ही कही कि सबेरे आना! वह देखो टेबुल पर ही रक्खी हुई है।" वास्तव में उस समय पुस्तक टेबुल पर रक्खी हुई थी। उसने पुस्तक को उठाया और चलने लगा, परंतु मैं उसे इस प्रकार क्यों जाने देता? मैंने डाटकर कहा कि "पुस्तक को हाथ न लगाना!" किंतु वह मेरी बात की कुछ भी पर्वाह न करते हुए उसे जेब में रखकर चल दिया। मैंने द्वार पर पहुँच उसे पकड़ लिया और दोनों में ख़ूब गुत्थमगुत्था हुई। परंतु वह तो था पूरा पचहत्था जवान। भला वह मुझे क्यों गिनने लगा! इसके सिवा उसके हाथ में एक लट्ठ भी था। ज्यों ही उसने मुझ पर एक ज़ोर का वार किया कि मैं मूर्च्छित होकर गिर पड़ा। इसके बाद क्या हुआ, सो मुझे

ज्ञात नहीं। कुछ ही देर के बाद मुझे मालूम पड़ा कि किसी ने मुझे संदूक़ में बंद कर दिया है।

रामनाथ—"यह तो एक अनोखी ही घटना हुई। इससे यह तो निश्चय-पूर्वक कहा जा सकता है कि वह सुदर्शन नहीं था। अच्छा, यह तो बतला कि उसकी पोशाक कैसी थी ?"

गोविंद—"वह एक बड़ा-सा काला कोट पहने हुए था, और उसमें विशेषता यह थी कि खड़ी कालर थी।"

रामनाथ—( कुछ विचारकर ) "तब तो मैंने इस मनुष्य को पहले कहीं देखा है। हाँ ठीक, जब मैं बाहर गया, उस समय यह आश्रम के द्वार पर ही खड़ा था। मोती एकदम उस पर झपटा, क्योंकि उसे संदेह हो गया था कि अवश्य यह कोई बला है। परंतु यह घटना बड़ी विचित्र हुई।"

इतने ही में टेलीफ़ोन की घंटी बजी। रामनाथ ने रिसीवर को उठाकर पूछा—"कौन है ?"

टेलीफ़ोनकर्ता ने कहा—"क्या आप रामनाथ हैं ?"

रामनाथ—"हाँ, मैं ही हूँ ! आप कौन हैं ?"

टेलीफ़ो०—"डॉक्टर गोखले ठाकुरद्वार।"

रामनाथ—"कहिए, क्या बात है ?"

डॉक्टर—"आपकी सूचना पढ़ी, क्या आपको कोई बंडल मिला है?"

रामनाथ—"हाँ, क्या वह आपका था ?"

डॉक्टर—"वह मेरा नहीं, बरन् एक स्त्री का है। परसों सड़क पर उसे मूर्च्छा आ गई थी, तब दवा के लिये लोग उठाकर मेरे यहाँ लाए थे। सचेत होने पर ब्राउन पेपर में बँधी हुई पुस्तक के संबंध में वह बड़ी उत्सुकता और चिंता से पूछताछ कर रही थी। विज्ञापन में लिखी हुई पुस्तक उसके पति की है।"

रामनाथ—( स्वगत ) "ठीक है"। ( प्रकट ) "परंतु उसका पति

मेरे यहाँ आकर वह पुस्तक ले गया, क्या आपको यह बात मालूम नहीं !"

डॉक्टर—"नहीं, मैं कुछ नहीं जानता। परंतु उस स्त्री के कहने से तो जान पड़ता था कि उसका पति बहुत बीमार है। तब वह पुस्तक लेने को आया हो, यह बिलकुल ही असंभव बात है। मेरी समझ में कोई दूसरा ही पुस्तक ले उड़ा है।"

रामनाथ—"हाँ, मुझे भी ऐसा ही जान पड़ता है। घटना बड़ी विचित्र है। उसके संबंध में मुझे आपसे कुछ कहना है, मैं अभी १० मिनट बाद आपके पास ही आता हूँ।"

यों कहकर रामनाथ ने रिसीवर को नीचे रख दिया और गोविंद से कहा—"अच्छा, तो अब मैं डॉक्टर गोखले के पास हो आता हूँ। तेरी तबियत तो ठीक है न ?"

गोविंद—"हाँ। अब तो मज़े की है।"

रामनाथ—"तो फिर तू ऐसा कर कि मोती को लेकर बाहर जा, और वह धूर्त तेरी इस प्रकार दुर्गति बनाकर किधर गया, इस बात का पता लगा ला। परंतु होशियार रहना। फिर लट्ठ-प्रसंग उपस्थित न करना ! और काम होते ही शीघ्रता से घर लौट आना।"

इस प्रकार समझा-बुझाकर रामनाथ डॉक्टर साहब के पास चल दिए। डॉक्टर साहब के पास पहुँचने पर उन्होंने रामनाथ को सब बातें संक्षेप में कह सुनाईं। सब बातों को सुन रामनाथ ने कहा—"क्या वह स्त्री उस बंडल में एक अपूर्ण पुस्तक का होना बतलाती थी ?"

डॉक्टर—"हाँ, और उस बंडल के संबंध में वह इतनी कुछ व्यग्र हो रही थी कि मैं कुछ कह नहीं सकता। संभव है कि उसमें कोई महत्त्व की पुस्तक हो।"

रामनाथ—"अच्छा, तो अब उस स्त्री का पता कैसे लगेगा ? क्या आप उसके संबंध में कुछ जानते हैं ?"

डॉक्टर—हाँ, जब कभी ऐसी घटना होती है, तो मैं सदा उनके पते लिख लिया करता हूँ; क्योंकि कभी-कभी उनके संबंध में बड़ी गड़-बड़ हो जाती है।"

रामनाथ—"बहुधा ऐसा हो जाया करता है। अच्छा, तो मुझे उसका पता दीजिए।"

डॉक्टर—"लक्ष्माबाई मनोहरलाल दादर पोर्टुगीज़ चर्च के पास।"

रामनाथ—"वही जो दादर का बड़ा चर्च है?"

डॉक्टर—"हाँ, मैं भी वही समझता हूँ।"

रामनाथ—"ठीक है, अब उसका पता लगाने में अधिक कष्ट न होगा। अस्तु, डॉक्टर साहब, आपको व्यर्थ कष्ट दिया, इसके लिये क्षमा कीजिए।" यों कहकर रामनाथ चल दिए।

रामनाथ के जाते ही थोड़ी देर बाद उस धूर्त का पता लगान के लिये मोती को साथ लेकर गोविंद बाहर निकला। उसने बनावटी डाढ़ी और मूछें लगाकर ऐसा पक्का स्वाँग बनाया था कि उस धूर्त-राज से भेंट हो जाने पर भी वह न पहचान सका।

मोती को लेकर गोविंद दरवाज़े के पासवाले पंप के वहाँ आया; क्योंकि यहीं उस लठ्ठनिरजंन को देख मोती ग़ुर्राया था।

वहाँ पर उभरे हुए चिह्नों को देखकर प्रत्येक मनुष्य समझ सकता था कि ये उसी धूर्ताधिराज के पाँव के चिह्न हैं!

पाँव के चिह्नों से आगे का पता लगाने में तो रामनाथ का मोती बड़ा कुशल था। कुत्तों को यह ज्ञान स्वाभाविक ही होता है, और उसमें भी फिर मोती-जैसे कुत्ते को रामनाथ का सहवास तथा उचित शिक्षा मिलने पर तो पूछना ही क्या है!

गोविंद मोती को लेकर पंप के पास गया और वे पाँव के चिह्न दिखलाकर उन्हें पहचानने के लिये मोती को संकेत किया।

मोती उसी क्षण अपना काम समझ गया। यह एक बार ग़ुर्राया,

मानो उन चिह्नों को देखकर उसी धूर्त का उसे स्मरण हो आया हो। वह गुर्राता हुआ चट से रामनाथ के कमरे की ओर गया और द्वार पर जाकर पाँव से वहाँ की ज़मीन कुरेदने लगा।

गोविंद ने सोचा—"एक बात तो निश्चित हो गई कि जो सभ्य रामनाथ को दरवाज़े में मिले थे, वही पुस्तक लेने को आए और उन्हीं ने मेरे सिर में लाठी मारी थी। (सिर पर हाथ फेरते हुए) देखो कितना बड़ा सूजन हो गया है। अभी तक दर्द करता है। अस्तु, मोती, हमें यहीं नहीं बैठ रहना है। वह धूर्त यहाँ से किधर को और कहाँ गया है? इसका पता लगाना है। रास्ता और चिह्न तो तुझे मालूम हो ही गए हैं।

इस प्रकार समझाकर गोविंद ने मोती को बाहर चलने के लिये संकेत किया। मोती उठ खड़ा हुआ और प्रार्थना-समाज की ओर से गिरगाँव बेकरोड पर पाँव के चिह्न सूँघता हुआ वह आगे बढ़ने लगा। ज्यों ही बीच में वे चिह्न नहीं दीखने लगते कि तत्काल वह पूँछ फुलाकर गुर्राने लगता। बेकरोड से वह कितनी ही गलियों और रास्तों में होता हुआ ग्रांटरोड की एक गली के नाके पर के मकान के सामने ठहर गया। इस मकान का अगला भाग बड़ी सड़क की ओर था। सामने छोटा-सा बग़ीचा भी था। मकान छोटा और सुंदर था। तीनों मंज़िल तक जाने के लिये सिढ़ियाँ बनी थीं।

मोती ने पूछ हिलाई और "पता लग गया", इस बात की सूचना देने के लिये ही मानो उसने गोविंद की ओर अर्थ-पूर्ण दृष्टि से देखा और ज़ीने की सिढ़ियों पर वह चढ़ने लगा। परंतु हलकी-सी सीटी बजाकर गोविंद ने उसे रोक दिया। उसने मोती के गले की ज़ंजीर को हिलाकर कहा—"शिकार का पता लग गया, दरवाज़े पर बोर्ड भी लगा है। 'विज्ञापन एजेंसी' पहली मंज़िल, कृष्णप्रसाद

वर्मा ख़ास डिटेक्टिव, दूसरी मंज़िल, ईगल टीडियो, तीसरी मंज़िल। बस, यही पूरा पता याद रखना चाहिए।"

परंतु यह ख़ास डिटेक्टिव पुलीस हमारे ही व्यवसायवाला हमारा ही प्रतिस्पर्धी! आज तक इसका कहीं नाम भी नहीं सुना था। परंतु यह बात रामनाथ से अवश्य कहनी चाहिए। इस प्रकार मन में निश्चय कर वह स्वगत कहने लगा—"यह कृष्णप्रसाद वर्मा कौन है? क्या यही तो हमारे यहाँ आकर मेरी दुर्गति नहीं कर गया? दूसरी मंज़िल ठीक है, सामने की खिड़कियाँ भी खुली हुई हैं। शायद यही ऑफ़िस है। भीतर दिया भी जल रहा है। संभव है, इस समय वह यहीं हो, परंतु यह बात निश्चय-पूर्वक कैसे कही जा सकती है? क्या ऊपर जाकर देखूँ; पर नहीं, रामनाथ ने ऐसा करने की मनाही कर दी है, तो फिर यह काम कैसे बनेगा? अरे, पर ठीक है, बस बन गया।"

रास्ते में बड़े-बड़े गैस लगे हुए थे और सिड्ढी उठाकर लैंप पोंछने-वाला उसी ओर आ रहा था। उसके पास आते ही गोविंद ने कहा—"तात्या, राम-राम! इस कंडोल पोंछने के काम से तुझे कंटाला नहीं आता? शाम हो गई। लोगों ने घर में दिए जला दिए, तो भी अभी तक तू दिए ही पोंछ रहा है!"

आगंतुक—"क्या करें साब, इंस्पेक्टर बड़ा टेढ़ा आदमी है। घर में मेरी औरत बीमार है, इससे देर हो गई।"

गोविंद—"अच्छा तो ला; मैं यह दिया साफ़ कर दूँ, तू थक गया होगा।"

दिया साफ़०—"क्यों ग़रीब की हँसी करते हो साब, यह काम तो हमारा ही है। क्या करें, बाल-बच्चों का पेट तो किसी तरह से भरना चाहिए!"

गोविंद—"अरे, हँसी की क्या बात, मुझे इस काम का बड़ा शौक़

है। मैं सच कहता हूँ, यह लालटेन मैं मुफ़्त में ही साफ़ कर दूँगा। यही नहीं, कभी-कभी मैं अपनी इस इच्छा को पूरी करने के लिये तुम लोगों को पैसे भी दिया करता हूँ। अगर तू मुझे यह कंडील साफ़ करने देगा, तो मैं चाय पीने को दो पैसे दूँगा।"

दिया साफ़०—"कहीं चित्त तो नहीं उचट गया है, साब ! लालटेन पोंछकर पैसा देना तो आपके पागल होने की बात बतलाता है।"

गोविंद—"हाँ, इस काम में तो मैं पागल-सा ही हूँ ; क्योंकि जब तक मैं एक-दो दिए साफ़ नहीं कर लेता, तब तक मेरा दिमाग़ ठीक नहीं रहता। अच्छा, तो तू मुझे यह दिया साफ़ कर लेने दे। मैं दो के बदले चार पैसे दूँगा।"

दिया साफ़०—"आपको कंडील पोंछने देना हमारे क़ायदे के ख़िलाफ़ बात है, और इतने ही में हमारे इंस्पेक्टर वग़ैरह आ गए, तो बड़ी आफ़त होगी। पर मैंने सुना है कि पागलों की बात भी कुछ मान लेना चाहिए। अच्छा, तो अब आप झट से यह लालटेन साफ़ कर दो।"

बस क्या देर थी, खंभे से सिड्ढी लगाकर गोविंद ऊपर चढ़ा। सिड्ढी ख़ूब ऊँची थी। उस पर से दूसरे मँजलेवाली कृष्णप्रसाद की ऑफ़िस की सब बातें साफ़ दिखाई देती थीं। गोविंद का ध्यान उसी ओर को था। वह इसी मतलब से ही ऊपर को चढ़ा भी था।

दिए पोंछनेवाला उसे इस प्रकार सुस्ती करते देख गिड़गिड़ा कर कहने लगा—"अरे साब, जल्दी पोंछ डालिए। कोई अफ़सर आ गया, तो बड़ी आफ़त होगी। देखना साब, कहीं मेरी नौकरी न चली जाय !"

गोविंद का ध्यान इसकी ओर ज़रा भी न था। वह अपनी धुन में लगा था।

## जब सूर्योदय होगा



वह एक टेबुल के पास बैठा हुआ कुछ पढ़ रहा था, ... ... ...

( पृष्ठ-संख्या ८१ )

Ganga Fine Art Press, Lucknow.

कृष्णप्रसाद के ऑफ़िस में दो मनुष्य बैठे हुए थे, उनमें से एक को तो गोविंद ने उसी समय पहचान लिया। वह ओवर कोट पहने था। यही तो उसका पूर्व परिचित धूर्ताधिराज लट्टूनिरंजन था।

दूसरा मनुष्य भी बहुत कुछ उसी रंग-ढंग का था। वह एक टेबुल के पास बैठा हुआ कुछ पढ़ रहा था, परंतु उसके हाथ में न तो कोई पुस्तक, न अख़बार। अरे! ठीक वह उसी हस्त-लिखित पुस्तक को पढ़ रहा होगा, उसके मुख पर के भावों का क्षण-क्षण में बदलना यही सूचित करता है।

सिर को उठा, शरीर को सँभालते हुए जितनी बारीकी से बन पड़ा, गोविंद ने सब कुछ देख लिया, और वह एकदम नीचे उतर आया। उस आदमी के हाथ पर चार पैसे टिका, राम-राम कर गोविंद मोती को ले चल दिया।

---

# अष्टम परिच्छेद

## रामनाथ की समय पर सहायता

बेचारी लक्ष्मी सरदार साहब के पास से बिलकुल निराश होकर लौटी। वह रात उसने जागने में ही बिताई। मनोहरलाल अभी पूरी तरह अच्छे न हो पाए थे। दो दिन से उन्हें बराबर भ्रम हो रहा था। वे अपनी 'जब सूर्योदय होगा'-नामक पुस्तक के विषय में ही वारंवार बड़बड़ाया करते थे।

इस पुस्तक के लिये मनोहरलाल ने बड़ा श्रम उठाया था, परंतु केवल ग़रीबी के कारण ही नित्य की मारामार पड़ने से यह पुस्तक अपूर्ण रह गई थी। आज कोई २० वर्ष में उन्हें इसका स्मरण होने से ही उनकी उत्सुकता बढ़ गई।

उनके मुँह से कई बार इस पुस्तक का नाम सुनाई पड़ा। इसी भाँति भिन्न-भिन्न शीर्षक, उनके अवतरण, महत्त्व-पूर्ण वाक्य और कोटि-क्रम यही सब बातें वारंवार वे बड़बड़ाया करते थे। उन्हें इस पुस्तक के सिवा और कुछ न सूझता था। उस समय यदि कोई उनकी बातों को लिख लेता, तो पुस्तक का शेष भाग सहज ही में पूर्ण हो सकता था।

यद्यपि पुस्तक आज कितने ही वर्षों से ऐसी ही पड़ी हुई थी, तो भी मनोहरलाल उसे भूले नहीं थे। उनका सारा लक्ष्य इसी की ओर था। सांसारिक कठिनाइयों के दूर होते ही, वे इसे पूर्ण कर, जन-समाज के सम्मुख रखने का दृढ़ संकल्प कर चुके थे। परंतु दुर्भाग्य से उन्हें अभी तक यह सुयोग प्राप्त न हुआ।

मनोहरलाल के इस बड़बड़ाने का बेचारी लक्ष्मी के चित्त पर

क्या प्रभाव पड़ा होगा। इसका स्पष्टीकरण करना कोई कठिन बात नहीं है। वह बेचारी चिंता करने लगी कि—"सुधि आने के बाद कुछ आराम हो जाने पर ये अवश्य उस पुस्तक को माँगेंगे, तब मैं क्या उत्तर दूँगी। पुस्तक खो जाने की बात मैं कैसे कह सकूँगी। जिस पुस्तक के लिये इन्होंने कठिन परिश्रम किया, जो इन्हें जीवन-सर्वस्व जान पड़ती है, वह मेरी बेपरवाही से खो गई। अब उसके मिलने की कुछ भी आशा नहीं, यह बात भी मैं इनसे कैसे प्रकट कर सकूँगी। यदि कह भी दी, तो इनके चित्त पर कैसा धक्का पहुँचेगा। इन्हें न-जाने क्या हो जायगा, और संभव है, वह धक्का न सह सकें।"

लक्ष्मी किंकर्तव्यमूढ़-सी होकर घंटों रोती रही। वह बेचारी और कर ही क्या सकती थी। उसे पुस्तक की चिंता चुप न बैठने देती थी। साथ ही मनोहरलाल को, हवा-पानी बदलने के लिये, बाहर ले जाने का प्रबंध भी करना था। अच्छे-अच्छे पौष्टिक पदार्थ खिलाकर स्वस्थ बनाना था, परंतु पास में पैसा एक भी न था। इसी कारण वह चारों ओर से चिंता के सागर में ग़ोते खा रही थी।

बेचारी लक्ष्मी बड़े विचार में पड़ गई। औषधोपचार और जल-वायु बदलने के विचार में वह सवेरे से फसी हुई थी। घर का सब सामान बेचने पर भी उसे सौ-सवा सौ रुपए मिलना अशक्य था।

जब से मनोहरलाल बीमार पड़े, तब से उनके पथ्यादि का ख़र्च उधार लिए द्रव्य पर ही चल रहा था। एक पड़ोसी से २५) रु० उधार लिए थे, परंतु वह भी तो ग़रीब था। इस कारण ऋण के द्रव्य से भी अधिक दिन काम चलना कठिन था।

लक्ष्मी ने सब ओर से निराश हो ईश्वर से प्रार्थना करना आरंभ किया। वह कहने लगी—"ये उधार लिए हुए रुपए व्यय हो जाने पर, आगे क्या व्यवस्था होगी। पथ्य की तो बात ही अलग रही, दोनों समय पेट-भर भोजन भी कैसे मिलेगा?"

"प्रभो ! इस सुधारणा के युग बीसवीं शताब्दी में उच्च कोटि के ग्रंथकारों और विद्वानों को निर्वाह के लिये मारामारी पड़े। हर-हर, यह कैसा न्याय है, भक्त-रंजन ! इस दुःखद प्रसंग से छुड़ानेवाला तुही है। अब तू ही मुझे मार्ग दिखा। तुझे छोड़कर अब मैं किसकी शरण में जाऊँ? प्रभो ! बहुत हो चुका, अब अधिक कठोर मत बनो ! मैं दरिद्रता से नहीं घबराई हूँ, परंतु औषधोपचार के लिये भी पास में पैसा नहीं। देखना माधव, कोई अघट घटना न घट जाय ! माधव, मेरे अहिवात की रक्षा करो। आप सर्वघटवासी हो, मैं आपसे क्या निवेदन करूँ ?"

इस प्रकार दिन-भर में कई बार उसने अविराम प्रार्थना की।

संध्या के चार बजने का समय है, बेचारी लक्ष्मी अपनी चिंता में मग्न है। इसी बीच राधाकृष्ण बाबू की गंगा ने आकर कहा—

"काकी, तुम्हारे यहाँ कोई पाहुना आया है ?" प्रेम-पूर्वक भाव से लक्ष्मी ने गंगा से आगत व्यक्ति को भीतर ले आने को कहा, और कुर्सी को ठीक तरह से टेबुल के पास लाकर रख दी। बेचारी मन-ही-मन विचार करती हुई नेत्रों से आँसू बहा रही थी। वह अपने आँसुओं को पोंछ भी न पाई थी कि गंगा उन मेहमान को लेकर आ पहुँची। आगंतुक ने आते ही पूछा—"क्या लक्ष्मीबाई आपका ही नाम है ? मुझे लोग रामनाथ कहते हैं, शायद आपने भी मेरा नाम सुना होगा ! 'सुदर्शन'-नामक लेखक को क्या आप जानती हैं ? प्रश्न चमत्कारिक है, इसलिये क्रुद्ध न होना। मैं किसी ख़ास कारण से पूछ रहा हूँ !"

लक्ष्मी ने कहा—"हाँ इन्हीं ( मेरे पति ) की 'सुदर्शन' के नाम से एक पुस्तक लिखी हुई है। हमारा निर्वाह ये उपन्यास और गल्पें ही लिखकर होता है। लेखक के स्थान पर 'सुदर्शन' नाम लिखा जाता है। इसी नाम से एक ग्रंथ इनका लिखा हुआ अभी छपने ही

वाला था, परंतु......। बेचारी लक्ष्मी का गला भर आया और वह आगे एक अक्षर भी न बोल सकी।"

रामनाथ ने अपनी जेब से एक समाचार-पत्र निकाला और अपनी विज्ञप्तिवाला भाग पढ़ने के लिये लक्ष्मीबाई को दिया। विज्ञापन पढ़ते ही उसके नेत्रों में हर्ष के आँसू भर आए, वह क्षणिक स्तब्ध रह दीनता-पूर्वक कहने लगी—"तब क्या वह बंडल आपको मिला है। ईश्वर की कृपा ही समझना चाहिए। आपको वह बंडल कहाँ मिला? मैं मूर्च्छित होकर गिरी थी। वहीं मिला होगा! क्या आप उसे साथ में लाए हैं?"

रामनाथ—( अचकते हुए ) "साथ में नहीं है, उस बंडल को अपना कहकर कोई दूसरा मनुष्य मेरे यहाँ से ले गया।" ( मन में वे बड़े सकुचाते रहे )

लक्ष्मीबाई ने पूछा—"क्या अपना कहकर! दूसरा मनुष्य ऐसा क्योंकर कह सकता है?"

रामनाथ—"तो क्या फिर 'सुदर्शन' ही ले आए हैं?"

लक्ष्मी०—"नहीं जी, ये तो आज ४-५ दिन से बीमार पड़े हैं। अभी ही कुछ नींद लगी है। आज दो दिन से तो इन्हें एक भ्रम-सा हो रहा है। भ्रम में जो कुछ बोलते हैं, वह उसी पुस्तक के संबंध में होता है। उसे अपनी कहकर दूसरा कौन ले गया होगा? इनकी पुस्तक पर अपना अधिकार जमानेवाला दूसरा कौन होगा? उसके विषय में तो दो मनुष्यों को छोड़ और किसी को ख़बर तक नहीं थी?"

रामनाथ—"दो मनुष्यों को किसी बात का ज्ञात होना ठीक है। इससे वह किसने ली होगी, इस बात का पता लगाने में भी ठीक पड़ेगा। वे दोनों मनुष्य कौन हैं?"

लक्ष्मी०—"ठाकुरद्वारवाले पुस्तक-प्रकाशक सेठ लक्ष्मीचंद और भानुप्रसाद वर्मा।"

रामनाथ—"भानुप्रसाद वर्मा ! नाम तो बड़ा विचित्र है । ये कौन महाशय हैं ?"

लक्ष्मी०—"बिट्ठल-बाड़ी के सरदार माधवप्रसाद का नाम तो आपने सुना ही होगा, उनका हमसे नाता है । ये उन्हीं के कारभारी हैं ।"

रामनाथ—"क्या सार्वजनिक वाचनालय स्थापित करनेवाले सरदार आपके नाते में हैं ?"

लक्ष्मी०—"हाँ ! वे मेरे काका श्वशुर हैं । परंतु अब वे हमें इस नाते से नहीं पहचानेंगे ; क्योंकि हमारी ऐसी अवस्था में भी उन्होंने सहायता देने से नाहीं कर दी है ।" बेचारी लक्ष्मी के नेत्रों में आँसू आ गए, उसने शांत होकर फिर कहा—"मानसिक श्रम की अधिकता से इनकी तबियत बिगड़ी है । आज पाँच दिन हुए, ज्वर आता है और उसमें बड़बड़ाते हैं । डॉक्टरों का मत है कि हवा बदलनी चाहिए और ५-६ महीने तक विश्राम भी लेना चाहिए । साथ ही पौष्टिक पदार्थ भी खिलाना चाहिए, तभी प्रकृति सुधर सकेगी, परंतु यह सब कैसे हो सकता है ? घर में एक पैसा भी नहीं, और न कहीं से सहायता मिलने की ही आशा है ।"

बेचारी लक्ष्मी से आगे न बोला जा सका, वह मुँह ढाँपकर रोने लगी ।

रामनाथ इस वृत्तांत को सुन दुःखित हुए । वहाँ पर रक्खे हुए सामान को देखकर उनकी ग़रीबी की कल्पना रामनाथ को भली भाँति हो गई । ऐसे अप्रतिम ग्रंथकार को अन्न-पान की चिंता करनी पड़े । हरे ! यह कैसी दुर्दशा है ? इस प्रकार रामनाथ विचार-सागर में निमग्न होना चाहते ही थे कि उन्हें फिर कुछ याद आ गई । यह समय सोने-बैठने का न था ।

तत्काल ही उन्होंने अपनी जेब से मनीबेग निकाल, सौ रुपए का एक नोट टेबुल पर रखकर कहा—"बाई ! आप पर बड़ा दुर्घट प्रसंग

है, यह दुःख भी कठिन है; तथापि ख़र्चे की कठिनता से वह न बढ़ जाय, इसीलिये मैं ये सौ रुपए क़र्ज़ के रूप में देता हूँ, इसे स्वीकार करो।"

नोट को देख मन में न-जाने क्या विचार, बेचारी लक्ष्मी चौंक उठी, और विनम्र हो कहने लगी—"आपने इतनी सहानुभूति दिखाई, यही बहुत है। आपका ईश्वर कल्याण करेगा। परंतु मैं आपका सहायता को स्वीकार नहीं कर सकती। कारण, आपका इनसे कभी परिचय तक नहीं है।"

रामनाथ—"मेरी मानसिक इच्छा है कि ऐसे विकट प्रसंग पर मैं आपकी सहायता करूँ, इसलिये आप व्यर्थ ही संकोच में न पड़कर इसे स्वीकार कीजिए। ये रुपए मैं ऋण के रूप में देता हूँ। 'सुदर्शन' की तबियत अच्छी हो जाने पर ये उसे सहज ही में चुका देंगे। बाई, इस नोट को स्वीकार कीजिए। संकोच की बात नहीं।"

लक्ष्मी०—"औषधोपचार के लिए मैं ये रुपए लिये लेती हूँ, परंतु आपके इस उपकार का बदला मैं कैसे चुका सकूँगी?"

रामनाथ—"इसके लिये बड़ा सुगम उपाय है! यदि मुझ पर विश्वास हो, तो सरदार साहब अपने भतीजे पर अप्रसन्न क्यों हैं, इनमें झगड़ा क्यों हुआ और भानुप्रसाद कौन है, इनका पूरा-पूरा हाल सुना दो, यही मेरे उपहार का बदला है।"

लक्ष्मी ने मनोहरलाल की आत्मकथा यथातथ्य कह सुनाई।

रामनाथ ने सब बातें शांति-पूर्वक सुनीं। इस सुशील संपत्ति की कथा से उनका अंतःकरण द्रवीभूत हो उठा। विद्वान् और सत् शील मनुष्यों पर जब दुःख और दरिद्रता का आक्रमण होता है, उस समय उनका चरित्र अंतःकरण को द्रवीभूत कर उसमें से विषम दुःखरूपी सोते बहा देनेवाला होता है।

रामनाथ ने कहा—"तब क्या सरदार साहब ने आपकी सहायता करने से इनकार कर दिया!"

लक्ष्मी०—"हाँ, क्योंकि वे अपने भतीजे पर अप्रसन्न हो गए हैं। कारण यह है कि प्रथम तो ये उनकी इच्छानुसार उनके कारभारी बनकर नहीं रहे। दूसरे इन्होंने मुझसे विवाह किया। मैं कुछ दिन पाठशाला में अध्यापिका रह चुकी थी। उनके मतानुसार स्त्रियों का नौकरी करना—चाहे वह कन्या-पाठशाला में ही क्यों न हो—महापाप है। तीसरे यह कि इनका व्यवसाय उन्हें पसंद नहीं है। सारांश, उनकी ओर से हमें कुछ भी सहायता नहीं मिल सकती।"

रामनाथ—"अच्छा, भानुप्रसाद को पुस्तक के विषय में कुछ ज्ञात है क्या?"

लक्ष्मी०—"हाँ, जिस समय मैं सरदार साहब से मिलने के लिये गई थी, उस समय भानुप्रसाद का व्यवहार सहानुभूति का था। जब मैं निराश होकर लौटी, तो वे मुझे स्टेशन तक पहुँचाने के लिये आए थे। वे कहने लगे 'सुदर्शन' हमेशा सहस्ररजनी-चरित्र की-सी कहानियाँ ही लिखा करते हैं; किंतु उनकी लेखन-शैली तो बड़ी उत्तम है। वे वर्तमान स्थिति का चित्र अंकित कर, जनता की प्रेरणा को बदलनेवाला, कोई गंभीर ग्रंथ क्यों नहीं लिखते? जन्म-भर ऐसी-वैसी कहानियाँ ही लिखते रहेंगे क्या? विना ऐसा उपयुक्त ग्रंथ लिखे सरदार साहब उन पर प्रसन्न नहीं हो सकते। वे बारंबार कहा करते हैं कि मनोहरलाल बुद्धिमान् है। वह अच्छी कीर्ति प्राप्त करता, किंतु मेरी बातें न मानीं, अब क्या दशा हो रही है। भानुप्रसाद की बातें बड़ी सहानुभूति-प्रदर्शक थीं। जिस समय मैंने उनसे 'जब सूर्योदय होगा'-नामक पुस्तक के विषय में कहा, तो वे कहने लगे कि वाह, तब तो बड़ी अच्छी बात है। मनोहरलाल को स्वस्थता प्राप्त होते ही सबसे पहले उनसे पुस्तक पूरी करवा लेना। जब सरदार साहब को यह बात ज्ञात होगी कि मनोहरलाल ने एक उत्तम ग्रंथ तैयार किया है, तो वे अवश्य ही पिछली सब बातें भूल जायँगे। वृद्धात्मा

को संतुष्ट करने के लिये और कोई साधन नहीं है ! बस, उन्हें आराम होते ही ग्रंथ को अवश्य पूरा कर लेना । वास्तव में भानुप्रसाद का कहना भी ठीक है ; क्योंकि वे सदा-सर्वदा कहते रहते हैं कि काका साहब को उत्तमोत्तम पुस्तकों के सिवा और कुछ नहीं सुहाता । अच्छी-अच्छी पुस्तकों का संग्रह करने में ही वे इतिकर्तव्यता समझते हैं ।"

रामनाथ—"यद्यपि सरदार साहब से मेरी कोई ख़ास मुलाक़ात नहीं है, तथापि उनकी कीर्ति का नाद मुझ तक अवश्य पहुँचा है । सामाजिक प्रश्नों पर शांति-पूर्वक और योग्य प्रमाणों से विचार प्रकट करनेवाले ग्रंथ उन्हें रुचिकर होते हैं । उनके बराबरी का ग्रंथ-संग्रह बड़े-बड़े अजायब-घरों में भी नहीं मिल सकता । मुझे दृढ़ विश्वास है कि 'जब सूर्योदय होगा,-नामक ग्रंथ उन्हें अवश्य रुचिकर होगा । परंतु इस समय हमें इन सब बातों पर विचार करते नहीं बनता है । अब आप मनोहरलाल को पूना ले चलने की व्यवस्था करें ।"

लक्ष्मी०—"अब तो सबसे प्रथम यही काम करूँगी । पड़ोसी के रुपए भी अभी चुकाए देती हूँ, और तत्काल ही पूना के लिये तैयारी करती हूँ । परंतु यह सब आपकी अनपेक्षित सहायता द्वारा ही हुआ ।"

रामनाथ—"अच्छा, तो अब आप लोग ख़ास पूने में ही रहेंगे या आस-पास के किसी छोटे-बड़े गाँव में ?"

लक्ष्मी०—"इसका अभी निश्चय नहीं हुआ है, डॉक्टर से पूछूँगी ।"

रामनाथ—"कौन डॉक्टर ? कदाचित् फाटक ही होंगे । वे मेरी भी पहचान के हैं । उन्हें यह चिट्ठी दिखाना । पूना-शहर के पास ही हिंगने-नामक गाँव के—जहाँ प्रो० कर्वे का महिला-विद्यापीठ है—एक मकान का यह पता है । वहाँ के लोग मेरे परिचय के हैं । वे आपके लिये सब प्रकार की व्यवस्था कर देंगे । डॉक्टर को यह पता दिखलाना और वे पसंद कर लें, तो फिर एकदम आप हिंगने के लिये चल देना ।

जब ये सौ रुपए ख़र्च हो जायँ, तो फ़ौरन् मुझे लिखना, मैं प्रति समय आपकी यथाशक्ति सहायता करने को तैयार हूँ। संकोच न करें।"

लक्ष्मी०—(उपकार-भार से कृतज्ञता भरे नेत्रों द्वारा) "वास्तव में आपका बड़ा भारी उपकार है। इसका बदला मैं किस प्रकार चुका सकूँगी, सो समझ में नहीं आता।"

रामनाथ—"बाई, इसकी चिंता आप न करें। जब मनोहरलाल स्वस्थ हो जायँगे, तो फिर ये आप ही चुका देंगे। नहीं तो आपका रामेश्वर भी तो दो मास के पश्चात् एम्० ए० होनेवाला है, वह चुका देगा। जब यह पुस्तक पूरी होगी, तो मनोहरलाल की बड़ी नामवरी हो जायगी और द्रव्य भी यथेच्छ ही मिलेगा।"

लक्ष्मी०—"परंतु पुस्तक का बंडल तो आपके पास से भी कोई ले उड़ा है?"

रामनाथ—"हाँ, परंतु मैं उसका पता लगाऊँगा।"

इस प्रकार आश्वासन देकर रामनाथ वहाँ से बिदा हुए। अब लक्ष्मी का चित्त कुछ स्वस्थ हुआ; क्योंकि उसे ख़र्चे के लिये द्रव्य मिल गया था। अंत को परमेश्वर ने प्रार्थना सुन ही तो ली! रामनाथ को ईश्वर ने ही भेजा। परमेश्वर उनका कल्याण करो। इस प्रकार पूना जाने की तैयारी करते समय उस दिन लक्ष्मी के मुख से ये शब्द कई बार निकले।

रामनाथ सीधे आश्रम को लौट आए। इधर गोविंद उनकी प्रतीक्षा कर रहा था। इन्हें देखते ही वह अपनी बात इतनी फुर्ती से कहने लगा कि रामनाथ उसकी चर्या देख विस्मित हो गए, परंतु ज्यों ही उन्होंने सुना कि उस ओवर कोटवाले का पता लग गया, वे बड़े प्रसन्न हुए और गोविंद को ख़ूब शाबासी दी। उन्होंने कहा—"गोविंद! वह मनुष्य चोर है, वह बंडल उसका नहीं है! परंतु वह रहता कहाँ है और उसका पता कैसे लगा?"

गोविंद ने सब बातें यथातथ्य कह सुनाईं। उसकी बातें सुन राम-नाथ मन-ही-मन कहने लगे—"कृष्णप्रसाद वर्मा का नाम तो मैंने आज तक नहीं सुना। प्राइवेट डिटेक्टिव में से प्रायः मैं सबको जानता हूँ, परंतु यह कोई नया जान पड़ता है। अभी-अभी इस काम में बहुत-से धूर्त लोग लग गए हैं। ख़ैर, कोई चिंता नहीं।"

गोविंद, अब तू वेष बदलकर मेरे साथ चल और उस वर्मा का ऑफ़िस बतला।

पाँच मिनट में ही दोनों वेश बदलकर बाहर निकल पड़े। रामनाथ को देख गोविंद ने आश्चर्य से पूछा—"क्या आप पंजाबी सिक्ख बने हैं?"

रामनाथ—"हाँ, सराफे में हमारी बड़ी भारी फ़र्म है। उसकी देख-रेख हमारा छोटा भाई सुजनसिंह करता है। परसों उसने सट्टा किया। फिर मुझ पर अहसान करने के लिये वह कुछ बोलना चाहता था, किंतु मैंने उसकी अच्छी तरह ख़बर ली और कुछ खरी-खोटी भी सुनाई। यह सब उसके कल्याण के लिये ही किया गया था, सट्टे की टेव बुरी है। इसमें धन और मान दोनों का नाश होता है। परंतु मेरी बात का मर्म वह न समझ सका, और घर से चल दिया। उसी दिन से घर के लोग मुझे बड़ा कोसते हैं। कहते हैं कि एक का एक ही छोटा भाई! अभी छोकरा है, कुछ पैसे बिगाड़ दिए, तो क्या हुआ। इसी तरह ठगाकर ठाकुर कहलाते हैं।"

यों कहकर सब लोग मुझे कोसते हैं। परंतु वह जायगा कहाँ? दस-पंद्रह दिन में रोता-झीखता आ जायगा। इस प्रकार मुझे विश्वास था, पर आज डेढ़ महीना हो गया, उसका कुछ भी पता नहीं लगता। माता ने तो मेरा सिर ही खा डाला। विचार किया कि अब चुपचाप बैठना ठीक नहीं। मुझे भी अब उसके लिये चटपटी लगी, क्योंकि हम दोनों भाइयों का प्रेम ही ऐसा है। बंबई के प्रसिद्ध

सेठ खेमराज-श्रीकृष्णदास के वेंकटेश्वर प्रेस के पास ही कृष्णप्रसाद वर्मा-नामक एक नए डिटेक्टिव अभी ही आकर रहने लगे हैं। भाई की खोज के लिये उन्हें कहना चाहिए। देखें कहीं मिल तो जाय! नहीं तो गया तो है ही। इस प्रकार बातें कहते हुए रामनाथ ने दीर्घ निःश्वास त्यागा।

गोविंद—( निःश्वास डालकर ) "अरे रे रे! परंतु यदि आपके भाई का मैं ही पता लगा दूँ, तो! मेरी तो उससे विशेष पहचान है! ( हँसकर ) जान पड़ता है कि आप यही रामायण वर्मा महाशय को सुनाकर फाँसेंगे!"

रामनाथ—"हाँ, ऐसी ही कुछ बात बनाना पड़ेगी। इसी बहाने उनके ऑफ़िस में पहुँच भी सकेंगे, और उनकी सब बातों का पता लग सकेगा! अरे, पर यह ऑफ़िस तो आ गया। तू यहीं आस-पास टहलते रहना। मुझे अधिक देर न लगेगी। यों कह रामनाथ कृष्णप्रसाद वर्मा के ऑफ़िस की ओर चल दिए।

---

# नवम परिच्छेद

## वर्मा महाशय का ऑफ़िस

रामनाथ अब आते होंगे, अब आते होंगे। अब की बार पाँच मिनट बाद तो अवश्य ही आना चाहिए। इस प्रकार गोविंद उनकी प्रतीक्षा कर रहा था। आधा घंटा हो गया, परंतु रामनाथ नहीं आए। तब गोविंद ने पास ही के एक होटल में जाकर चाय, चिवड़ा उड़ाया। ४५ मिनट हो जाने पर भी रामनाथ के आने का पता नहीं। अब तो वह बड़ा अधीर हो उठा और वर्मा महाशय के ऑफ़िस में जाने का निश्चय किया; किंतु न-जाने अपने जाने से रामनाथ के काम में कुछ असुविधा हो, यह विचारकर वह रुक गया।

पचास मिनट होते ही एकदम रामनाथ नीचे आए। आते ही गोविंद ने उत्सुकता से पूछा—"कहो, क्या हुआ? शिकार हाथ लगा या नहीं?"

रामनाथ—"अब प्रश्न करने का समय नहीं, झटपट ताँगा ले आ!"

गोविंद—"अजी! हुआ क्या? कुछ कहो तो सही!"

रामनाथ—"बस, पहले एक विक्टोरिया ( ताँगा ) लेकर आ, फिर कहूँगा।"

गोविंद जाकर शीघ्रता से एक ताँगा किराए पर ले आया। राम-नाथ ने कालवा देवी की ओर गाड़ी ले चलने को कहा। गाड़ी में दोनों बैठ गए, गाड़ी चलने लगी। थोड़ी ही देर के बाद गोविंद ने फिर रामनाथ से प्रश्न किया—"कहाँ चलोगे?"

रामनाथ—"कालवा देवी रोड पर प्रो० देशबंधु की टाइप राइटिंग कंपनी में।"

गोविंद—"वहाँ क्या काम है?"

रामनाथ—"ये सब बातें फिर तेरी समझ में आ जायँगी।"

गोविंद—"फिर की बात अच्छी नहीं, हर वक्त फिर कह देते हो, मैं अभी ही सुनूँगा। मेरी उत्सुकता इतनी बढ़ गई है कि अब मैं एक क्षण-भर भी नहीं रह सकता, क्या वर्माजी मिल गए?"

रामनाथ—"हाँ, मिल गए! यही नहीं, वरन् मैंने उसे पहचान भी लिया।"

गोविंद—"तुम तो कहते थे कि मैं उसका नाम भी नहीं जानता।"

रामनाथ—"सो कुछ झूठ नहीं है। दस वर्ष पूर्व यही मनुष्य इस उद्योग में था, परंतु उस समय इसका नाम और कुछ था। बीच में कुछ षड्यंत्रकारियों में मिल जाने से सात वर्ष तक बड़े घर की सैर करनी पड़ी है। उधर से सवारी लौटकर अभी ही आई है, और नाम बदलकर यह धंधा फिर शुरू किया है।"

गोविंद—"हूँ, तब तो सवारी बड़े घर की सैर कर आई है।"

रामनाथ—"यह अव्वल नंबर का दुष्ट और लपाटी है।"

गोविंद—"और वह लट्ठभारती जिसने मेरे सिर में लाठी मारी थी, (सिर पर हाथ फेरते हुए) अरे रे! अभी तक दर्द हो रहा है! क्या वह दुष्ट भी वहाँ था!"

रामनाथ—"उसे मैंने अच्छी तरह नहीं देखा; क्योंकि वह भीतर की एक कोठरी में बैठा था; परंतु था वह उसी का साझीदार।"

गोविंद—"तब तो वह भी उसी के समान होगा।"

रामनाथ—"इसमें संदेह ही क्या है?"

गोविंद—"अच्छा, उस बंडल का क्या हुआ?"

रामनाथ—"उसका भी पता लग गया, उसे मैंने देख भी लिया। बात-बात में मैंने उसके गुप्त व्यवहार की पेटी खुलवाई, तो उसमें वह बंडल दिखाई दिया। समय साधकर उस पेटी की ताली का ठप्पा भी मैं मोम पर उठा लाया हूँ।"

गोविंद—"तो अब आगे के लिये क्या निश्चय किया है?"

रामनाथ—"बहुत-सा त्रास मिटाने के लिये आज हमें चोरी का धंधा करना पड़ेगा।"

गोविंद—"क्या उस पेटी को तोड़ने का?"

रामनाथ—"हाँ, और बस आज ही रात को।"

गोविंद—"जान पड़ता है, वह हस्त-लिखित पुस्तक चुराना है?"

रामनाथ—"नहीं, सिर्फ़ घंटे-भर के लिये ले आना है।"

गोविंद—"आपकी बात मैं नहीं समझ सका।"

रामनाथ—"यदि वह पुस्तक ही ले ली जाय, तो उन्हें संदेह हो जायगा और वे लोग सावधान हो जायँगे। हमको इस चतुरता से काम करना चाहिए कि वे लोग कुछ भी न समझ सकें। मैं समझता हूँ, उसने यह बंडल किसी दूसरे के लिये चुराया है। उस दूसरे का भी पता लगाना है।"

गोविंद—"उसे चुराकर फिर क्या करना होगा?"

रामनाथ—"मुझे वह बंडल केवल ३-४ घंटे के लिये चाहिए। इतने में उसकी दो-तीन प्रतियाँ टाइप करा लेनी पड़ेंगी।"

गोविंद—"परंतु वह पुस्तक क्या छोटी है? लगभग साठ हज़ार शब्द होंगे। उसकी कॉपी करने में ही कितनी देर लग जायगी?"

रामनाथ—"मैंने जो व्यवस्था सोच रक्खी है, उससे यह काम केवल दो-ढाई घंटे का है। अच्छा देख, प्रो० देशबंधु की कंपनी यह सामने आ गई, चल उतर।

दोनों व्यक्ति गाड़ी से उतर ऑफ़िस में पहुँचे और क्लर्क से प्रोफ़ेसर साहब के पास अपने आने की ख़बर भिजवाई। तत्काल प्रोफ़ेसर साहब आए, और रामनाथ को अपने ऑफ़िस में ले जाकर बिठाया। उन्हें देख रामनाथ ने कहा—"क्या आपने मुझे नहीं पहचाना ? इन डाढ़ी-मूछों को देख चकित न हो जाइए !"

प्रोफ़ेसर—"रामनाथ ! पहली बार तो मैं नहीं पहचान सका, किंतु फिर आवाज़ से जान लिया। इस वेश में तो आपको कोई नहीं जान सकता। अस्तु, कहिए क्या काम है ?"

रामनाथ—"मुझे एक लेख की कुछ प्रतियाँ कराती हैं, कोई साठ हज़ार शब्द होंगे।"

प्रोफ़ेसर—"अच्छी बात है, आपका काम कर दिया जायगा।"

रामनाथ—"परंतु काम बड़ी शीघ्रता का है। दो घंटे में निबट जाना चाहिए।"

प्रोफ़ेसर—"हाँ, हम जल्दी तो करेंगे, पर·········।"

रामनाथ—"यथाशक्य शीघ्रता होनी चाहिए। रात को आप अपने २५-३० टाइपिस्ट बिठलाइए। अब चाहे उन्हें कुछ देर के लिये ब्यालू की छुट्टी दे दीजिए। फिर रात को ग्यारह-साढ़े ग्यारह के लगभग बुलवाइए। तब तक मैं वह लेख भी लाकर देता हूँ। चार्ज के लिये आप संकोच न करें, जो कुछ होगा, मैं पूरा देने को तैयार हूँ। परंतु काम दो घंटे में ही निबट जाना चाहिए।"

प्रोफ़ेसर—"आपका काम अवश्य नियमित समय में ही कर दिया जायगा।"

रामनाथ—"अच्छी बात है, तो अब ठहर गया, मैं जाता हूँ।"

गाड़ी किराए की कर रामनाथ गोविंद सहित लौट आए। मार्ग में एक लोहार की दूकान पर उन्होंने अपने मोम के ठप्पे पर से चाबी तैयार करवा ली। नमूना सादा होने से अधिक देर न लगी। आश्रम में

पहुँचने पर गोविंद ने पूछा—"कृष्णप्रसाद की पेटी तोड़ने का तो आपने निश्चय कर लिया, परंतु यह काम कितना धोखे का है, इस पर भी कुछ विचार किया है ?"

रामनाथ—"धोखा तो है ही, इसीलिये उसमें का महत्त्वपूर्ण काम तुझे सौंपा जायगा ; क्योंकि यह काम मैं तुझसे कराऊँगा ।"

गोविंद—"ठीक है, लीजिए मेरा इस्तीफ़ा और अपना काम सँभालिए, मुझे ऐसी नौकरी की ज़रूरत नहीं ।"

रामनाथ—"गोविंद ! अभी तक तू केवल मूर्ख ही रहा । अरे, इससे नौकरी छोड़ने की क्या बात ! मैं जिस प्रकार बतलाऊँ, वैसा करने में कुछ भी डर नहीं है, तू सहज ही में सब काम कर सकेगा ।"

गोविंद—"अच्छा, मैं मूर्ख ही सही । यह तो बतलाओ, हम वहाँ पहुँच ही कैसे सकेंगे ?"

रामनाथ—"हाँ, यह काम कुछ कठिन है, क्योंकि अगला द्वार बड़ी सावधानी से बंद किया जाता है । नीचेवाली खिड़कियों में भी शटर्स हैं, और उनकी देख-रेख के लिये एक पेंशनर सिपाही भी है, जो रात को वहीं सोता है ।"

गोविंद—"तब तो वह भरी पिस्तौल भी सिरहाने रखकर सोता होगा, और उसके पास २-४ कुत्ते भी अवश्य होंगे ।"

रामनाथ—"कुत्ते हैं या नहीं, सो मैं नहीं जानता ।"

गोविंद—"कुछ भी हो, परंतु वहाँ पहुँचना बड़ा कठिन है, मेरे हाथ से यह काम न हो सकेगा ।"

रामनाथ—"अरे, इतना घबराता क्यों है ? तेरा काम सिर्फ़ पेटी खोलकर बंडल निकाल लाने का है । बाक़ी सब काम मैं करूँगा ।"

गोविंद—"यदि सभी आप करें, तो इसमें मेरी कोई हानि न होगी, और न मैं इसका बुरा ही मानूँगा ।"

रामनाथ—"परंतु तेरी सहायता तो चाहिए ही। अच्छा, तू यहीं ठहर, मैं आता हूँ।"

यों कहकर रामनाथ चल दिए और गोविंद कोठरी के किंवाड़ बंद-कर कुछ विचार करने लगा। २० मिनट के बाद ही किसी ने दरवाज़ा खटखटाया। गोविंद ने दरवाज़ा खोलकर देखा, तो सामने एक मेहतर खड़ा था।

उसके मैले कपड़े और शरीर से छूटनेवाली दुर्गंध से ही सब कोई उसे पहचान सकता था कि वह कौन है? उसके एक हाथ में मैले का टोकरा भी था। गोविंद की ओर देखकर उसने ज़रा ऊँची आवाज़ से कहा—"झा···ड़ूँ।"

गोविंद—"झाड़ू (मेहतर-भंगी) तो मुझे भी दीख रहा है, परंतु यहाँ तेरा क्या काम है?"

मेहतर—"गनेसदासजी को मोरी साफ़ करूँगा।"

गोविंद—"यहाँ गनेस-फनेस कोई नहीं रहता। तू पता भूल गया है क्या? समझा।"

वह मेहतर कोठरी में घुसने लगा। उस की यह धृष्टता देख गोविंद ने घुड़ककर कहा—"अबे सुनता नहीं! क्या बहरा है। गनेसदास यहाँ नहीं रहते। क्या इतनी-सी हिंदुस्तानी भाषा नहीं समझ सकता?"

मेहतर—"हिंदी-हिंदुस्तानी तो ख़ूब समझता हूँ, परंतु ज़रा सभ्यता-युक्त भाषा को ही अच्छी तरह समझता हूँ। समझे गोविंदराम!"

गोविंद—(चकित होकर) "वाह रामनाथ, मुझे ख़ूब छकाया! सचमुच ही मैं नहीं पहचान सका। परंतु यह तो बताओ, यह स्वाँग किसलिये?"

रामनाथ—"इस समय यही काम देगा।"

गोविंद—"सचमुच इस बार तो तुम कमाल ही कर गए। बिलकुल मेहतर ही दीखते हो। परंतु इसका उपयोग तो बतलाओ!"

रामनाथ—"इस समय यही ठीक है।"

गोविंद—"अच्छी बात है, परंतु मुझे काम तो बतलाओ? याद है, वहाँ कहा था कि घर चलकर बतलाऊँगा।"

रामनाथ—"हाँ, अच्छी तरह याद है, और अब वह सब तुमसे कहे देता हूँ। रामनाथ ने थोड़ी देर में उसे सब बातें समझा दीं।"

उसी रात को लगभग दस बजने के समय ग्रांटरोड पर वेंकटेश्वर प्रेस के पासवाली एक गली में भटकता हुआ एक उदास मुख मेहतर दिखाई पड़ता था। कोने पर के एक मकान के दरवाज़े पर उसने अपना झाड़ू और टोकरा रखकर किवाड़ खटखटाना आरंभ किया। पहरेवाले सिपाही के किवाड़ खोलकर बाहर आते ही मेहतर ने कहा—"सरकार! मोरी साफ़ करने आया हूँ।"

सिपाही—"इतनी रात को? अबे किसकी मोरी?"

मेहतर—"किरिस्नपरसाद, ऐं! हाँ, ऐसा ही सरकार का नाम है।"

सिपाही—"क्या कृष्णप्रसाद वर्मा?"

मेहतर—"सो तो कुछ पक्की बात मुझको मालूम नहीं। पर इनसपेटर साब ने इसी गली के नाके पर कहा था। मेरे लड़के को हुक्म देकर चले गए और सरकार, छोकरे को नाम याद नहीं रहा। क्या करूँ हजूर, काम तो करना चाहिए, नहीं तो इनसपेटर सजा कर देगा।"

सिपाही—"यहाँ तो कोई मोरी साफ़ करने की नहीं। अगर होती, तो मालिक मुझसे कहकर जाते।"

मेहतर—"अब क्या करूँ, झाड़ू-टोकरा उठाकर ठेट गिरगाम से यहाँ तक लाया, और अब पता नहीं लगता। मेरी किसमत। अरे भगवान अब फिर से इनको उठाकर घर ले जाने में कितनी मेहनत होगी। इसी गली के नाके पर था, ऐसा तो मुझसे छोकरे ने कहा,

और नाम भी किरिस्नपरसाद ही होगा। पर वो बरमा के कौन, सो मुझको याद नहीं। अच्छा सरकार, मुझ पर मेरबानी करोगे ?"

सिपाही—( ठसक से ) "कैसी मेहरबानी, बिना समझे क्या कहूँ। परंतु अगर पैसे-वैसे माँगता हो, तो तोड़े में फ़क़त नौसौ निन्यान्नबे रुपए, पंद्रह आने, ग्यारह पाई की ही कमी है, समझा !"

मेहतर—"सरकार का कैसा मजे का बोलना है ! सिरफ एक पाई आपके पास है, एँ हजूर !" ( हँ-हँकर हँसता है )

सिपाही—( और भी ठसक से ) "क्यों, कैसे पहचाना ?"

मेहतर—"हजूर, मुझको वैसी मेरबानी नहीं चाहिए। फकत सवेरे तक ये झाड़ू-टोकरा भीतर रखने दो। सरकार, सवेरे जल्दी आकर मैं ले जाऊँगा। हजूर, सिर पर कैसे उठाकर ले जाऊँगा। मेरबानी करो सरकार। आती बखत इनसपेटर साब से नाम पूछ आऊँगा। हैं-हैं, सरकार का कैसा मजे का बोलना, ऐसी बात तो मैंने कभी नही सुनी !"

सिपाही मन-ही-मन अपनी प्रशंसा पर फूला न समाया ; क्योंकि उसे आज तक इस प्रकार का कोई श्रद्धावान् भक्त नहीं मिला था। उस मेहतर के मुँह से अपनी प्रशंसा सुन वह प्रसन्न होकर कहने लगा—"अच्छा, तो अपना सामान उस ज़ीने के कोने में रख दे।"

मेहतर—( कृतज्ञता दिखाता हुआ ) "गरीब पर बड़ी मेरबानी हुई सरकार।" यों कहकर उसने सब सामान कोने में रखकर पूछा—"हजूर सवेरे कित्ती बजे उठते हैं ?"

सिपाही—"यहाँ कोई छः-साढ़े छः बजे उठता हूँ।"

मेहतर—"वाह सरकार, अच्छा टेम जम गया। मैं सवेरे जल्दी उठता हूँ, और चा पीकर आऊँगा, तो साढ़ी छै बज जायगी। हजूर ने बडी मेरबानी की। हैं, हैं, हैं, हजूर की बात कैसी मजे की है। नौ सौ निन्यान्नबे रुपए, पंदरा आने, ग्यारा पाई।" हैं, हैं, हैं, करता हुआ राम-राम कर वह मेहतर वहाँ से चल दिया।

सिपाही—(स्वगत) "बड़ा सीधा मेहतर है, ग़रीब मेहतर की ज़ात ठहरा। ये ग़ुलाम लोग ऐसी बातें ख़ूब बनाते हैं। होशियार भी है, देखो मेरी बात कैसे समझ गया। अच्छा, तो अब सो जाना चाहिए।

यों विचार, साँकल किवाड़ लगाकर, सब तालों को देख-भालकर वह ऊपर अपने स्थान पर जा सोया। उसके सो जाने के बाद आध घंटे तक सिवा उसके ख़र्राटे के और कोई शब्द नहीं सुनाई देता था। अगर कोई मनुष्य ज़ीने के पास छुपकर बैठता, तो उसे सिपाही के सो जाने के बाद एक दूसरा शब्द भी सुनाई देता, और दूसरी ही कुछ हलचल भी दीख पड़ती। यहाँ तक कि उस मेहतर के रक्खे हुए टोकरे में से किसी जीवित प्राणी की हलचल देखकर तो वह घबरा ही जाता। दो ही मिनट के बाद वह टोकरा ख़ाली ज़मीन पर रक्खा हुआ, और एक नवयुवक छोकरे का उसमें से निकल खड़ा होना दीख पड़ता। यदि वह ध्यान-पूर्वक देखता, तो उसे वह और कोई न होकर 'गोविंद' ही था, यह बात भी ज्ञात हो जाती।

गोविंद सब प्रकार स्वस्थ होकर दबे पैर ज़ीने से ऊपर जा पहुँचा। और दाहनी ओर का दरवाज़ा खोलकर कृष्णप्रसाद के ऑफ़िस में घुसा। जेब से चोर लेंटर्न निकाल उसने कोठरी की सब वस्तुएँ बारीकी से देखीं। सामने ही उसे रामनाथ की बतलाई हुई पेटी भी दिखाई दी।

गोविंद ने फ़ुर्ती से साथ में लाई हुई कुंजी से पेटी का ताला खोला। तत्काल ही उसका ध्यान एक बंडल की ओर गया और उसने चट से पहचानकर स्वगत कहा—"यही तो बंडल है।"

अब हमें यह बतलाने की आवश्यकता नहीं कि उस बंडल में क्या था। गोविंद ने वह बंडल एक रूमाल में लपेटकर एक लंबी डोर से उसे बाँधा और धीरे-से सामनेवाली खिड़की खोली और एक बार सिर निकालकर फिर बंद कर ली।

नीचे सड़क पर एक मनुष्य इधर-उधर टहल रहा था। वस्त्रादि के रंग-ढंग से वह कोई भिखारी जान पड़ता था। शराब पिए हुए मनुष्य की तरह वह इधर-उधर झोंके खा रहा था। वह धीरे-धीरे आगे बढ़ा और कृष्णप्रसाद वर्मा के ऑफ़िस की दीवार से टिककर खड़ा हो गया।

परंतु चमत्कार यह हुआ कि फिर खिड़की खुली और वह भी केवल नाम-मात्र के लिये, केवल बंडल नीचे पहुँचाने तक। नीचेवाले भिखारी का ध्यान उसी ओर था। ज्यों ही बंडल-सहित रस्सी नीचे आई कि चट से उसने बंडल को खोलकर अपने फटे कोट की जेब में रख लिया। फिर घूमता हुआ वह कालवा देवी के रास्ते की ओर चल दिया।

बंडल नीचेवाले मनुष्य को मिलते ही उसने खिड़की बंद कर ली। कुछ ही दूर जाने पर उस भिखारी को एक ख़ाली विक्टोरिया बग्घी। जाती हुई दिखाई दी। भिखारी का रंग-ढंग एकदम बदल गया। उसके बनावटी नेत्र, अटकती हुई आवाज़ आदि नशेबाज़ी के सब ढंग बदल गए।

स्पष्ट और हल्की आवाज़ से उसने गाड़ीवाले को कालवा देवी की ओर ले चलने को कहा।

रात को बारह बज चुके थे। सड़क साफ़ थी। इस कारण गाड़ीवाले ने ज़ोर से गाड़ी चलाई। १५-२० मिनट में ही गाड़ी प्रो० देश-बंधु के ऑफ़िस के सामने आकर खड़ी हो गई। किराया चुकाकर गाड़ी से उतरता हुआ वह मनुष्य किसी और ही वेश में दिखाई दिया।

उसकी पोशाक सभ्य मनुष्य के जैसी थी। यदि आप लोग पहचान सकते हों, तो वे रामनाथ थे। फुर्ती से ऑफ़िस में जा पहुँचे।

वहाँ प्रोफ़ेसर इनका रास्ता देख ही रहे थे। जाते ही इन्होंने कहा—"प्रोफ़ेसर साहब! लीजिए हमारा लेख। कोई साठ हज़ार शब्द

होंगे। इसके बीस भाग कर लीजिए, तो ठीक पड़ेगा। आपके टाइपिस्ट भी बीस ही आए हैं न ?"

लेख के विभाग करने का काम पाँच ही मिनट में समाप्त हो गया। घंटी बजते ही प्रत्येक टाइपिस्ट अपना-अपना काम लेकर खट-खट करने लगे।

रात का समय ! तीन-तीन हज़ार शब्दों का काम लेकर पंक्ति-बद्ध बैठे हुए बीस टाइपिस्ट। टाइप के बटन दबाते हुए उनकी अंगुलियों की दुर्दशा, बीस यंत्रों का एक साथ खटाखट होना, रात अधिक बीत जाने से ज्यों-त्यों काम निबटाकर घर जाने को उत्सुक बने हुए टाइपिस्टों के मुख-मंडल आदि की छटा देखते ही बनती थी।

डेढ़ घंटे में सब काम तैयार हो गया। 'जब सूर्योदय होगा'-नामक पुस्तक के लिखे हुए भाग की चार प्रतियाँ तैयार हो गईं। काम को शीघ्रता से निबटा देने के बदले प्रोफ़ेसर साहब को धन्यवाद देकर, उनके दाम चुका, रामनाथ प्रतियों को जेब में रख, नीचे उतरे। यहाँ गाड़ी खड़ी हुई थी, उसमें बैठ रामनाथ ग्रांटरोड की ओर चल दिए। कुछ दूर जाकर वे गाड़ी से उतर पड़े। फिर उन्होंने वहाँ शराबी-जैसा ढंग बनाकर रास्ता पकड़ा। निश्चित स्थान पर पहुँचते ही उन्होंने धीरे से सीटी बजाई, और चट से कृष्णप्रसाद के ऑफ़िस की खिड़की खुलकर एक रस्सी नीचे आई। नीचे भिखारी-वेश में रामनाथ खड़े ही थे। उन्होंने बंडल को रस्सी से बाँधकर ऊपरवाले व्यक्ति से सिर हिलाकर कुछ संकेत किया। उसने भी प्रत्युत्तर में सिर हिलाया और रस्सी खींचकर खिड़की बंद कर ली।

कृष्णप्रसाद की पेटी[1] में पुस्तक ज्यों-की-त्यों रख दी गई, और वह लड़का मेहतर के आने तक छुपकर रहने के लिये नीचे उतरकर उस टोकरे में जा बैठा।

ठीक साढ़े छः बजे मेहतर आया। सिपाही राम भी उठ बैठे थे,

उनसे राम-राम कर कहा—"सरकार को कल फ़िज़ूल तकलीफ़ पड़ी और मुझको भी मेहनत पड़ी। मैं किरिस्नपरसाद कहता था, वे तो दूसरे निकल गए। पर हजूर ने बड़ी मेरबानी की। सरकार की मजेदार बात मैं अभी तक याद कर रहा हूँ। हैं, हैं, हजूर नौ सौ निन्यान्नबे रुपए पंद्रह आने ग्यारह पाई। हैं, हैं, हैं, अच्छा हजूर राम-राम।"

वह मेहतर अपना झाड़ू-टोकरा लेकर वहाँ से चल दिया।

आश्रम में पहुँचने पर गोविंद ने कहा—"यह काम तो निबट गया। रामनाथ! तुम्हें विश्वास न होगा, परंतु सच कहता हूँ, कल की रात मैंने कैसे काटी है, मैं ही जानता हूँ।"

---

# दशम परिच्छेद

## रामेश्वर और विरला

सवेरे कुछ खा-पीकर रामनाथ बाहर निकल पड़े। गोविंद अभी सोया हुआ था। बेचारे को कल रात-भर जागना पड़ा था। जाते समय रामनाथ ने उससे कह दिया था कि "कदाचित् मैं शाम तक भी न लौट सकूँगा, किंतु तू यहीं आश्रम में रहना।" गोविंद अच्छा कहकर फिर सो गया।

वेशांतर करके लगभग १० बजने के समय वे ग्रांटरोड पर घूम रहे थे। उसी समय उन्हें कृष्णप्रसाद ऑफ़िस में घुसते दिखाई दिए। पाँच मिनट बाद ही एक सिपाही तार का फ़ार्म लेकर नीचे उतरा। चपरास से वह कृष्णप्रसाद का नौकर दीख पड़ता था।

कृष्णप्रसाद ने यह तार किसे किया होगा? इस बात का पता लगाने के लिये रामनाथ उस सिपाही के पीछे-पीछे चल दिए।

तार-ऑफ़िस में भी ख़ासी भीड़ थी, इस कारण वह नौकर तार का फ़ार्म हाथ में लिए खिड़की के पास खड़ा हुआ था। तरकीब से रामनाथ ने तार को पढ़ लिया।

"भानुप्रसाद C/o सरदार साहब विट्ठल-वाड़ी, पूना।

आज रात को आठ बजे सरदार-भवन में मिलो, साथ में हस्तलिखित प्रति लाता हूँ। कृष्णप्रसाद"

तार को पढ़कर रामनाथ को बड़ा आश्चर्य हुआ। वे तार-ऑफ़िस से बाहर आकर स्वगत कहने लगे—"मेरी कल्पना ठीक निकली। लक्ष्मीबाई के वाक्यों से अब मैं समझ गया कि यह पुस्तक भानुप्रसाद के लिये ही चुराई गई है। मेरे विचारों की पुष्टि इस तार

से हो गई। उस हस्त-लिखित प्रति का सिवा भानुप्रसाद के और किसी को पता न था। तथापि अब एक बार लक्ष्मीबाई से और मिल लेना ठीक होगा। संभव है कि इससे आगे का कार्य और कुछ सुलभ होगा।" विचार को निश्चित कर वे टेलीफ़ोन-ऑफ़िस में पहुँचे और घंटी बजा, गोविंद से कह दिया कि—"मैं किसी काम के लिये बाहर जाता हूँ, दो दिन में लौटूँगा।" इसके बाद वे लक्ष्मीबाई के घर की ओर चल दिए।

आज लक्ष्मीबाई बड़ी प्रसन्न थी—"हमारा रामेश्वर अब कलकत्ते से आनेवाला है। प्रो० वसु की देख-रेख में उसका अभ्यास पूर्ण हो गया। वसु महोदय ने उसे अच्छा प्रमाण-पत्र दिया है। आज ही उसका पत्र आया है।" इस प्रकार उसने रामनाथ को शुभ-समाचार सुनाए।

लक्ष्मी को आनंदित देख रामनाथ को भी हर्ष हुआ। लक्ष्मी ने फिर कहा—"आपके दिए हुए पते को देख डॉक्टर साहब बड़े प्रसन्न हुए, और उन्होंने उसे विट्ठल-वाड़ी के पास ही बतलाया है।"

रामनाथ—"हाँ, यही कोई दो मील का अंतर है। परंतु मनोहर-लाल के लिये वह स्थान बहुत उपयुक्त होगा। अस्तु, कल जब भानुप्रसाद के संबंध में बात निकली, तो उसमें तुमने कहा था न कि "बाई! भानुप्रसाद कई वर्षों से सरदार साहब के पास है और उस पर उनकी बड़ी कृपा है।"

लक्ष्मी०—"हाँ, मैंने इनके ही मुँह से सुना था; कितनी ही बार तो ऐसा भी सुना कि सरदार साहब अपनी संपत्ति का बहुत-सा भाग भानुप्रसाद को ही देंगे! क्योंकि वह उनकी मर्ज़ी से यत्किंचित् भी दूर नहीं है।"

रामनाथ—"क्या कभी मनोहरलाल से भानुप्रसाद की मुला-क़ात हुई है?"

लक्ष्मी०—"अभी तो कई दिनों से नहीं हुई, परंतु परस्पर पहचानते हैं।"

रामनाथ—"ठीक मनोहरलाल ने कभी उनसे 'जब सूर्योदय होगा'-नामक पुस्तक के विषय में बातचीत की है?"

लक्ष्मी०—"ये कहते थे कि भानुप्रसाद स्वयं लेखक हैं। उस पुस्तक के संबंध में केवल बातचीत ही नहीं हुई, वरन् लिखा हुआ भाग भी उन्हें पढ़ने को दिया गया था। कल यह बात कहना तो मैं भूल ही गई थी।"

रामनाथ—"क्या हस्त-लिखित भाग उसे पढ़ने को दिया गया था? तब तो वह पुस्तक का मर्म अवश्य समझ गया होगा। ख़ैर, अब जाने की कब तैयारी करोगी?"

लक्ष्मी०—"प्रवास का श्रम सहन करने की शक्ति आते ही जाने का विचार किया है। साथ में हमारा रामेश्वर भी रहेगा।"

रामनाथ—"तब तो और भी अच्छी बात होगी। अच्छा, तो अब मैं जाता हूँ।"

रामनाथ वहाँ से चलकर सीधे दादर स्टेशन पर आए।

पूना-मेल को अभी तीन घंटे की देरी है, और कल्याण में चंद्र-प्रभा ( रामनाथ की पुत्री ) के लिये वर भी देखना है। इसलिये लोकल से कल्याण जाकर वर देख आना चाहिए। वहां से पूना-मेल द्वारा पूने को चल देंगे। इस प्रकार विचारकर रामनाथ लोकल ट्रेन से सवार हो कल्याण चल दिए।

वर को देखकर पूना जानेवाली मेल की प्रतीक्षा करते हुए रामनाथ कल्याण के प्लेटफ़ार्म पर टहल रहे थ। इतने ही में पंजाब-मेल आ धमकी। गाड़ी से सामान उतारा जाने लगा। एक ओर एक षोडश-वर्षीया बालिका खड़ी हुई अपने सामान की जाँचकर बक्स गिनवा रही थी। सहसा उसी की ओर रामनाथ की दृष्टि पड़ी। प्रत्येक बक्स

और थैले पर "विमलाबाई C/o सरदार माधवप्रसाद बिट्ठल-बाड़ी, पूना" के पते को पढ़कर रामनाथ स्वगत कहने लगे—"कदाचित् यही सरदार साहब की विमला है।" लक्ष्मीबाई ने भी तो कहा था कि 'वह अभी नासिक अपनी मौसी के यहाँ गई है। संभवतः वही लौट-कर आई है।" परंतु वेटिंग-रूम में बैठी हुई वृद्धा कौन है? और विमला उससे क्या बातें कर रही है?

रामनाथ इस बात का पता लगाने के लिये वेटिंग-रूम के सामने इधर-उधर टहलने लगे। इतने ही में उन्होंने ये बातें सुनीं—"मौसी, तेरा दर्द कैसा है? पीठ अब तो नहीं दुखती। ईश्वर ने ही रक्षा की।"

वृद्धा—"दर्द अभी कैसे बंद हो सकता है? मेरी पीठ तो अब बिलकुल ही बेकाम हो गई है। बेचारे रामेश्वर ने मुझे शीघ्रता से खींच लिया। नहीं तो मैं मर ही चुकी थी। भगवान् उसका कल्याण करे। परंतु तेरा हाथ कैसा है? अरी, मेरी क्या फ़िक्र करती है, तू अभी कुँआरी है, तेरा विवाह होना है।"

विमला—"हाथ अभी वैसा ही है, परंतु अब उतना भय नहीं। यदि रामेश्वर ने पहिया उठाकर मेरा हाथ न खींचा होता, तो यह अवश्य टूट जाता।"

वृद्धा—"अच्छा, तो रामेश्वर हमारे साथ बिट्ठल-बाड़ी क्यों नहीं चलता। अब तक उसने हम पर जैसा उपकार किया है, वह और भी करे और हमको घर पहुँचा दे, तो सरदार साहब से कहकर उसका अच्छा सत्कार कराया जायगा।"

विमला—"मैंने उनसे चलने को ख़ूब कहा, परंतु उनकी चर्या साथ चल सकने के भाव को दीखती थी। उनसे विशेष पहचान न होने से मैं अधिक आग्रह भी नहीं कर सकी। यदि तेरे कहने से मान जाय। तो तू कह। देख, मैं अभी उन्हें बुलाकर ले आती हूँ।"

यों कहकर विमला रामेश्वर को बुलाने के लिये चल दी। रामनाथ

यह सब दृश्य देख रहे थे। इन सब बातों को सुनकर वे जान गए कि वृद्धा कौन है? परंतु किस रामेश्वर ने इन्हें संकट-मुक्त किया, इसका कुछ पता न लगा।

रामेश्वर को ढूँढ़ने के लिये विमला इधर-उधर देख रही थी। इतने ही में दूसरी ओर के प्लेटफ़ार्म से एक युवक शीघ्रता से आता दिखाई दिया, उसे देखते ही विमला का मुख प्रसन्न हो उठा।

यह सब दृश्य देख रामनाथ की समझ में सब बातें आ गईं। निसैनी-पुल के खंभे के पास रामेश्वर और विमला में बड़ी देर तक बातें होती रहीं। उनकी बातों को सुनकर रामेश्वर कौन हैं, रामनाथ ने इस बात का पता लगाने की कई बार इच्छा की। परंतु यह सोचकर कि यदि मैं पास चला गया, तो संभव है, वे चुप हो जायँ और उनके रंग में भंग हो जाय। इसी कारण वे सामान के आस-पास ही टहलते रहे। उस सामान के पास ही रक्खे हुए एक ट्रंक और बिस्तरे पर उनकी दृष्टि पड़ी। उन पर रामेश्वरप्रसाद एम्० ए० दादर, बंबई के नाम का लेबुल था।

रामनाथ आश्चर्यान्वित होकर विचारने लगे—"जान पड़ता है, विमला से बातें करनेवाला ही रामेश्वर है। यदि ऐसा ही हो, तो इसे विलक्षण योगायोग समझना चाहिए। उसकी इस प्रकार की नम्रता देख जान पड़ता है कि वह रामेश्वर के किए हुए उपकारों के बदले कृतज्ञता प्रकट कर रही है।"

"विमला को गए बड़ी देर हो गई, परंतु वह अभी तक नहीं लौटी। गाड़ी जाने में भी अब अधिक देर नहीं है।" इस प्रकार मन-ही-मन संतप्त होती हुई वृद्धा वेटिंग-रूम से बाहर आई।

विमला को इस बात का भय हो ही रहा था। इसी कारण उसका ध्यान वेटिंग-रूम के द्वार की ओर ही था। वृद्धा को देखते ही वह सहम गई और रामेश्वर से कहने लगी—"अच्छा, तो अब आप

मौसी के पास चलिए, वह आपसे कुछ निवेदन करना चाहती हैं। उनकी इच्छा है कि आप हमें घर पहुँचा दें।"

इस बात को ज़रा ऊँची आवाज़ से कहते हुए विमला ऐसा कुछ भाव दिखा रही थी, मानो उसकी मौसी को जान पड़े कि विमला को रामेश्वर अभी ही मिला है।

विमला को उत्तर देते हुए रामेश्वर ने कहा—"मैं कलकत्ते से बहुत दिनों में लौटा हूँ, और अब माता-पिता के दर्शन की बड़ी उत्सुकता है। इस कारण अब तुम मुझसे विशेष आग्रह न करो। दिए हुए वचन के अनुसार मैं कुछ भी करके विट्ठल-वाड़ी आकर तुमसे अवश्य मिलूँगा। यदि तुम स्वीकार करो, तो मेरी भी हार्दिक इच्छा है कि अपना आजन्म सहवास रहे, ऐसा प्रबंध करूँ।"

रामेश्वर ने विमला की ओर अर्थपूर्ण दृष्टि से देखा। विमला ने स्मित हास्य कर लज्जा से सिर झुका लिया। उसके मृदु हास्य से रामेश्वर सब बातें समझ गया। उसके मुख-मंडल पर विलक्षण भाव दिखाई पड़ने लगा।

विमला—"आज के संकट से आपने मुझे बचाया, इसके बदले यदि मैं अपना तन-मन सर्वस्व अर्पण कर दूँ, तो भी थोड़ा है। मैं आपसे कभी उऋण नहीं हो सकती, परंतु घर के लोगों की सम्मति—!"

रामेश्वर ने कुछ अधीर होकर रुकते-रुकते कहा—"हाँ, अवश्य।"

विमला—"और वहीं मुझे कठिन जान पड़ती है। सरदार साहब की नीति विचित्र है।"

विमला आगे कुछ बोलना ही चाहती थी कि इतने में वृद्धा ने पुकारा—"विमला! अरी विमला!"

बेचारी वृद्धा बड़ी देर तक प्रतीक्षा करती रही, और अंत को ज़रा घबरा भी उठी थी। उसे यह भी आश्चर्य हुआ कि इतनी देर से इनमें क्या बातें हो रही हैं। वृद्धा पुराने विचारों की थी, विमला

का रामेश्वर के साथ इतनी देर तक और वह भी स्टेशन के प्लेटफ़ार्म पर खड़े रहकर वार्तालाप करना, उसे कभी सहन न होता। किंतु कृतज्ञता के कारण उसका मन भी रामेश्वर के लिये इतना अनुकूल और पक्षपाती बन गया था कि वह मुँह से अक्षर भी न निकाल सकी। इसके सिवा रामेश्वर की चर्या से उसके कुलीन और सभ्य होने का भी उसे विश्वास हो गया था, तथापि इस दीर्घ विलंब के कारण उसे विमला पर थोड़ा-सा क्रोध आ ही गया। उसने संतप्त होकर फिर विमला को पुकारा। दूसरी बार का बुलाना सुनते ही विमला झटपट वृद्धा के पास आ पहुँची। पीछे-पीछे रामेश्वर भी था। विमला को तो उसका जितना अधिक सहवास मिले, उतना ही आनंदप्रद था। उसके आते ही वृद्धा ने तमककर कहा—

"क्योंरी! इतनी देर क्या करती थी, ऐसी क्या बातें हो रही थीं? विमला ने कुछ भी उत्तर न दिया। इतने ही में रामेश्वर को सामने खड़ा देखकर वृद्धा ने शांत होकर कहा—"भैया! तुमने हम दोनों के प्राण बचाए। यदि तुम न होते, तो हमारे बचने की कोई आशा न थी। जिस प्रकार तुमने हम दोनों को यहाँ तक पहुँचाया, उसी भाँति यदि घर तक पहुँचा दो, तो बड़ा उपकार होगा। सरदार साहब को ये समाचार ज्ञात होंगे, तो वे तुम्हारा बड़ा सत्कार करेंगे!"

रामेश्वर—"आपका कहना सब ठीक है, तथापि......।"

वृद्धा—"भैया, तुम्हें साथ चलने में क्या कुछ रुकावट है? यदि ऐसा हो, तो कहो।"

रामेश्वर के उतरे हुए मुख-मंडल की ओर देख वृद्धा अधीर हो गई। बेचारी विमला भी बड़े पसोपेश में पड़ी। रामेश्वर का मुख-मंडल एकदम क्यों गंभीर हो गया, इसका कारण वह न जान सकी। वह रामेश्वर की ओर देखती ही रह गई। कुछ देर विचार करने के

बाद रामेश्वर ने कहा—"विमला ने मुझे आपका पूरा परिचय दे दिया है, और मैं भी आपका ही कोई हूँ।" रामेश्वर के नेत्रों में आँसू भर आए और उससे आगे न बोला गया।

"मैं भी आपका ही कोई हूँ" इस वाक्य का अर्थ वृद्धा कुछ समझ न सकी। विमला भी विचार में पड़ गई। वह रामेश्वर की ओर टकटकी लगाए देख रही थी; क्योंकि उसे रामेश्वर ने अपने ही कुटुंबी होने का कुछ भी परिचय नहीं दिया था।

वृद्धा के साथ वे सब वेटिंग-रूम में गए और मनोहरलाल का सरदार साहब से जो कुछ झगड़ा हुआ था, वह सारी रामकथा रामेश्वर ने वृद्धा को कह सुनाई।

रामेश्वर के मुख से यह सब वृत्तांत सुन विमला के नेत्रों से भी आँसू बह चले। रामेश्वर को शांत करने के उद्देश्य से वृद्धा कहने लगी—"भैया, यदि ऐसा ही है, तो मैं विशेष आग्रह नहीं कर सकती।"

रामेश्वर ने कहा—"और आप भी इस घटना का समाचार सरदार साहब से न कहिए।"

वृद्धा और कुछ कहना चाहती थी कि इतने ही में बंबई जाने-वाली लोकल ट्रेन की घंटी बजी।

"अच्छा, तो अब मैं जाता हूँ। विमला! जाता हूँ।" यों कहकर रामेश्वर उनसे बिदा हुआ।

विमला उसे गाड़ी तक पहुँचाने आई। गाड़ी छूटने तक वह धीमे-धीमे कुछ बातें करती रही। साथ ही उसका नेत्र-संकेत भी चल रहा था। जब तक गाड़ी दृष्टि-ओट न हो गई, विमला उसी ओर देखती रही। रामेश्वर भी हाथ से रूमाल लेकर कुछ संकेत करते रहे।

यह सब दृश्य रामनाथ ध्यान-पूर्वक देख रहे थे। उनके मन में इन लोगों के संबंध अब कोई ज्ञातव्य बात शेष न रही थी। वे मन-ही-

मन विचारने लगे कि इन दोनों में परस्पर बड़ा निष्कपट प्रेम पाया जाता है। यदि दोनों का योगायोग जुड़ जाय, तो कितनी अच्छी बात हो! ठीक है; मुझे इसके लिये यत्न करना चाहिए।

इतने ही में मेल का समय हो गया। स्टेशन पर यात्रियों की भीड़ होने लगी। कोई सामान उठा रहा था, तो किसी का कुछ और उद्योग चल रहा था। सीटी बजी और धड़धड़ाती हुई पूना-मेल कल्याण स्टेशन पर आ खड़ी हुई। रामनाथ, विमला, वृद्धा आदि सब मंडली गाड़ी में बैठ गए और सीटी देकर गाड़ी धुआँ उड़ाती चल दी। गाड़ी में बैठ जाने पर रामनाथ को सवेरे की घटना का सब हाल मालूम हो गया।

---

# एकादश परिच्छेद

## वर्माओं की गुप्त मंत्रणा

पूना आनेवाला शायद ही ऐसा कोई प्रवासी हो, जो सरदार-भवन को न जानता हो। भवन का सुंदर बँगला, बाहर का वह रमणीय बाग़, बिजली के पंखे, लिफ़्ट आदि आधुनिक उपकरण देख, प्रत्येक प्रवासी को एक-आध रात्रि के लिये भवन में ठहर जाने की इच्छा हो जाती है। भवन के मैनेजर भी बड़े सज्जन और मिष्टभाषी पुरुष हैं। एक बार भवन में ठहरा हुआ मनुष्य दूसरी बार आने पर भूलकर भी अन्य जगह नहीं ठहरता है। भवन की व्यवस्था बड़ी अच्छी है।

आज शाम के वक़्त एक ऊँचा, मोटा और ज़रा-ज़रा-सी आँखोंवाला कोई यात्री भवन में आया। यहाँ इस आगत व्यक्ति का परिचय दिखाने की आवश्यकता नहीं, क्योंकि पाठकगण पहचान ही गए होंगे कि ये दूसरे कोई न होकर तार में सूचित समय पर आ उपस्थित होनेवाले भानुप्रसाद थे।

जान पड़ता था कि भानुप्रसाद पहले सरदार-भवन में कई बार ठहर चुके हैं, क्योंकि आने के साथ ही उन्होंने किसी परिचित व्यक्ति की भाँति व्यवस्थापक से कहा—"पंडितजी! आज रात के सवा आठ बजे हमारे एक मेहमान आनेवाले हैं, इसलिये तीसरे मँजले की आख़िरी कोठरी हमें दीजिए। वह अच्छी और खुली हवादार है। हमारे मेहमान भी बड़े शिष्ट और बंबई के शौक़ीन प्राणी हैं। प्रबंध अच्छा रखिए। किसी भी प्रकार की न्यूनता न होने पावे। नौ बजने के लगभग हमारे भोजन की व्यवस्था भी ऊपर ही कर दें, जिससे हमें आपकी गड़बड़ में न पड़ना पड़े।"

मैनेजर ने भी उनके कहे अनुसार सब प्रकार का प्रबंध कर देने का वचन दिया, और भानुप्रसाद अपने मेहमान की प्रतीक्षा में बैठ गए।

ठीक सवा आठ बजे उनके मेहमान आ पहुँचे, उनके पास केवल हैंडबेग था। चाय पीने के पश्चात् दोनों मित्रों ने भोजन किया, और इधर-उधर की गप्पें हाँकने के बाद भानुप्रसाद ने पूछा—"क्यों, वह हस्त-लिखित पुस्तक साथ लाए हो न ?"

कृष्णप्रसाद ने धीरे से बेग खोला और भानुप्रसाद को पुस्तक देकर कहा—"यह लो। अमुक एक वस्तु की आवश्यकता है, इस बात का निश्चय हो जाने पर वह मुझे न मिल सके, यह बात असंभव है ! रामनाथ का विज्ञापन तुम्हारा तार आने के पूर्व ही मैं देख चुका था। परंतु मैंने उसकी ओर बिलकुल ही ध्यान नहीं दिया, क्योंकि मुझे उस बात का बिलकुल ही महत्त्व न जान पड़ा। पर तुम्हारा सांकेतिक तार पाते ही मैंने अपने मुख्य आदमी को इस काम के लिये नियुक्त किया। मेरे साँवलिया को तो तुमने देखा ही होगा...वह बड़ा चालाक है, उसी ने यह काम किया। वह माधवाश्रम की ओर गया, और रामनाथ रूपी व्याधि के बाहर जाते ही उसने काम बनाया। रामनाथ के पास प्रायः अच्छे-अच्छे की दाद नहीं लगती, वह बड़ा उद्दंड है। उसका नौकर गोविंद घर पर था। वह साँवलिया को एकाएक पुस्तक न देकर उससे पूछने लगा कि तुम्हीं सुदर्शन हो, यह बात मैं कैसे मान लूँ ! परंतु साँवलिया भी बड़ा उस्ताद है।

"पुस्तक टेबुल पर रक्खी है, यह बात उसके ध्यान में आते ही उसने अपने हाथ के सोंटे से एक ज़ोर का वार किया। गोविंद मूर्च्छित होकर गिर पड़ा, साँवलिया जेब में पुस्तक रखकर चल दिया !"

भानु०—"परंतु रामनाथ को तो तुम पर संदेह नहीं है ?"

कृष्ण०—"छिः ! कैसी बातें करते हो। नाम-मात्र को संशय

नहीं, हो भी कैसे सकता है ? तुम व्यर्थ ही रामनाथ-रामनाथ कर भयभीत हो रहे हो। मेरे सामने रामनाथ ही क्या, किसी का भी वश नहीं चलता। किसी कारण-वश रामनाथ की ख्याति अवश्य हो गई है, परंतु होशियारी किसे कहते हैं, जानते हो ? इसी काम में उसे कैसा चकमा दिया ! परंतु देखो मोहन !.........।"

भानु०—"अरे, वह नाम यहाँ मत लो, यहाँ तो मेरा वही नाम भानुप्रसाद है। आज दस वर्ष से मैं बाहर निकला हूँ.........., मेरी बात तुम समझ ही गए होगे।"

कृष्ण०—( हँसकर ) "उँह, इसमें कौन कठिन बात थी। भला वह कैसे भूली जा सकती है। परंतु वहाँ अपने दिन बड़ी चैन से गुज़रते थे। अरे, पर अब तो हम बड़े सभ्य बन गए हैं। क्यों मोहन ?... नहीं भानुप्रसाद, तू बडा मतलबी है ! कैसे मौक़ा ताककर बिट्ठल-बाडी में ही रह गया। क्यों न रहता भाई, वहाँ से घर भी तो पास है।"

भानु०—"हाँ, घर अवश्य ही पास है, परंतु उससे मतलब ही क्या ? वे दिन बीत गए, और तेरे सिवा अब मुझे दूसरा कोई जानता भी नहीं है। तुझ पर मेरा विश्वास है।"

कृष्ण०—"एक अंधे ने दूसरे को अंधा कह दिया, तो उससे कोई लाभ नहीं; यह बात मैं अच्छी तरह जानता हूँ। परंतु यार ! (पुस्तक पर चुटकी मारकर ) इसका क्या करोगे ? मैंने भी इसके सब पृष्ठ उलटकर देखे हैं !"

भानु०—"क्यों, ग्रंथकार ने विलक्षण बुद्धिमत्ता प्रकट की है न ?"

कृष्ण०—"मुझे तो इसका कुछ भी अर्थ समझ न पड़ा। शराब, जुआँ, दारिद्र्य आदि के विषय में ही लंबी-चौड़ी रामकथा भरी पडी है।"

भानु०—"तू केवल गाजर-पारखी ही जान पड़ता है। पुस्तक का नाम बिलकुल यथार्थ है, और तो क्या ? केवल नाम से ही ग्रंथकार की

विद्वत्ता का पता लग सकता है। पुस्तक अद्वितीय है। मैंने इसे कई वर्ष पूर्व पढ़ी थी। वाङ्मय-संबंधी ज्ञान तेरी अपेक्षा मुझे अधिक है, मैं स्वतः भी तो कुछ लिखना जानता हूँ।"

कृष्ण०—"ठीक है! बड़े घर की सैर कर आनेवाले लेखकों का आजकल बड़ा आदर होता है। पहले तो मुझे इस बात पर विश्वास न होता था, परंतु अब यह अक्षरशः सत्य जान पड़ती है। सचमुच ही यह पुस्तक अनुपम है, परंतु अपूर्ण है। जान पड़ता है, इसे ही पूरी कर ग्रंथकार के नाते प्रसिद्ध बनोगे।"

भानु०—"बस, कह गया। क्यों। अब कैसा पहचाना।"

कृष्ण०—"मैं तो पहले ही समझ गया था, परंतु मोहन, नहीं भानुप्रसाद, इससे कुछ लाभ भी होगा? या यों ही इतना वटाटोप किया गया?"

भानु०—"अरे, लाभ की बात क्या पूछता है? मेरा दाव लगा, तो पच्चीस हज़ार से कम न लूँगा।"

कृष्ण०—"क्या? पच्चीस हज़ार रुपए! और वे इस निकम्मी पोथी पर! पागल है।"

भानु०—"अब देखना कि कौन पागल है? गिनकर पच्चीस हज़ार लूँगा, समझा।"

कृष्ण०—"भला पच्चीस हज़ार रुपए मिलने के लिये इसकी कितनी प्रतियाँ बिकनी चाहिए, इसका भी कुछ विचार है?"

भानु०—"भले ही एक प्रति भी न बिके। पुस्तक छपकर तैयार हो जानी चाहिए, और लेखक के स्थान पर 'भानुप्रसाद वर्मा' का नाम-मात्र होना चाहिए। बस! इतने ही से मेरा काम चल जायगा, पूरी बात फिर कहूँगा।"

पूरी कथा कहने में बड़ी देर लगी, सब काम से निबटने पर भी वह बात पूरी न हो सकी। संक्षेप में वह इस प्रकार है—

"सरदार साहब को पुस्तकों का बड़ा चाव है, यदि कोई उनके पास एकआध उत्तम पुस्तक लेकर जावे, तो वे बड़ी प्रसन्नता से उसे पुरस्कार देकर सम्मानित करते हैं। मेरे लेखक होने की बात भी उन्हें विदित है। मुझ पर उनकी पूर्ण कृपा है। वे मुझे बड़ा पंडित समझते हैं। उन्होंने अपने विल ( वसीयतनामा ) में भी मेरे नाम बहुत-सी संपत्ति लिख दी है। किंतु यदि उच्च कोटि का यह ग्रंथ मेरे नाम से प्रसिद्ध हो गया, तो उस विल में मेरे नाम की संपत्ति दुगनी-तिगुनी बढ़ जाने की संभावना है। इसके सिवा सरदार साहब की स्त्री की एक भांजी है, वही सारी संपत्ति की स्वामिनी होनेवाली है। वह बालिका बड़ी सुंदर और प्रेमिनी है। अभी वह क्वाँरी है। उसके लिये भी यत्न करना है। यदि योगायोग जुड़ गया, तो मेरे वैभव और आनंद का वारापार ही न रहेगा। एक बार छिपकर मैंने वह विल पढ़ा था, उसी से मुझे ये सब आशाएँ बँधी हैं। जब...... ।"

कृष्ण०—( बीच में ही ) "ऐसी बात है !"

भानु०—( बात को पूरी करते हुए ) "सारी संपत्ति की अधिकारिणी विमला बनेगी। इसलिये यदि उसने मेरे साथ विवाह करना स्वीकार कर लिया, तो फिर कुछ पूछना ही नहीं, क्योंकि वह संपत्ति उसके नाम से क्या और मेरे नाम से क्या, एक ही बात है। मैं ही उसका स्वामी बन जाऊँगा।"

कृष्ण०—"परंतु क्या विमला तुझे पसंद कर लेगी ?"

भानु०—"न करने को क्या हुआ ! यदि इस पुस्तक के मेरे नाम से प्रसिद्ध हो जाने पर सरदार साहब प्रसन्न हो गए, तो विमला मेरी हुई ही समझना। मुख्य बात उन्हें प्रसन्न करने की है। उनकी इच्छा के विरुद्ध विमला कुछ भी न कर सकेगी ; क्योंकि ऐसा करने में उसकी बड़ी भारी हानि होने की संभावना है। ज्यों ही उसने चूँ-चपड़ की कि विल में से उसका नाम निकाल दिया जायगा।

सरदार साहब वैसे ही वचन के पक्के हैं, और वह उनकी ख़ास पुत्री भी नहीं, औरत की भांजी है।"

कृष्ण०—"परंतु आजकल की लड़कियाँ ग़रीब नहीं होतीं। मुझे उसका अनुभव नहीं; परंतु बहुत-से लोगों को कहते सुना है कि वे पैसे की परवाह नहीं करतीं, न माता-पिता का ही उन्हें कुछ भय होता है। उनको तो किसी से प्रेम हो जाना चाहिए। आजकल इस प्रेम ने बड़ी गड़बड़ी मचा रक्खी है।"

भानु०—( ठसक से ) "कुछ भी हो, बुड्ढे देवता को प्रसन्न करने की ही देर है। फिर तो सभी बातें आप ही बन जायँगी।"

कृष्ण०—"किंतु यदि उसका विवाह किसी अन्य से होना निश्चित हो गया हो, तो?"

भानु०—"ऐसा कभी नहीं हो सकता। मैं ही तो कारभारी हूँ, मेरी इच्छा के विरुद्ध एक पत्ता भी नहीं हिल सकता।"

कृष्ण०—"सरदार साहब ने न भी किया हो, किंतु यदि उसका ही किसी अन्य से प्रेम हो गया हो, तो?"

भानु०—"तू कैसी बातें करता है। ऐसा कभी नहीं हो सकता। बिट्ठल-बाड़ी में आज तक ऐसा कोई युवक नहीं आया, जिस पर वह मोहित हो जाय। सरदार साहब को एकांत-वास प्रिय है।"

कृष्ण०—"तो क्या तुझ अधेड़ को वह पसंद कर लेगी?"

भानु०—"अधेड़! कहता किसे है? किसी भले नवयुवक की भी मेरे समान ठसक न होगी। विगत चैत्र से मुझे सिर्फ़ बयालीसवाँ वर्ष लगा है। तू क्या समझा था? देखना, अब थोड़े ही दिनों में मैं स्त्री और द्रव्य दोनों किस प्रकार प्राप्त कर लेता हूँ।"

कृष्ण०—"स्त्री और द्रव्य कहने के बदले द्रव्य और स्त्री को अनुक्रम से कहता तो ठीक होता। अस्तु, परमेश्वर करे, तेरी इच्छा पूर्ण हो। पर देखना यार! कहीं ऐसा न हो कि तू मुझे भूल जाय।"

भानु०—"भला तुझे कैसे भूल जाऊँगा? इसी काम में अभी तुझसे बहुत कुछ सहायता लेनी है। यदि मेरी इच्छा सफल हो गई, तो तुझे दस हज़ार रुपए दूँगा।"

कृष्णप्रसाद बड़ा प्रसन्न हुआ और उसने यथाशक्ति सहायता देने का वचन दिया। इसके बाद भी दोनों मित्रों में बहुत कुछ वार्तालाप हुआ। ग्यारह बजने के लगभग वे दोनों वहाँ से चल दिए।

जाते समय भानुप्रसाद के हाथ में वह हस्त-लिखित प्रति दिखाई दी। एक नंबर की कोठरी में उनकी यह मंत्रणा चल रही थी और दूसरे नंबर की कोठरी में दोनों के बीच के द्वार के सूराख़ में कान लगाकर एक मनुष्य दो घंटे से ये सब बातें सुन रहा था। उन दोनों के वहाँ से चल देने पर वह उठ खड़ा हुआ, और अपनी कोठरी की बिजली का बटन दबाकर रोशनी की, और स्वगत कहने लगा—"ठीक है! भानुप्रसाद, तुम्हारा सारा षड्यंत्र मैं समझ गया। इस फंदे में कृष्णप्रसाद भी हैं, परंतु ठसक कितनी! उँह, रामनाथ में क्या दम है। पर चोरो! याद रखना, अब मैं पराक्रम दिखाऊँगा कि रामनाथ में क्या बल है। यदि दोनों को बड़े घर की सैर न कराऊँ, तो मुझे रामनाथ न कहना।"

---

# द्वादश परिच्छेद

## गोविंद का लघु लेखन

दूसरे दिन सबेरे गोविंद को रामनाथ का भेजा हुआ तार मिला कि "मोती को लेकर एकदम पूना के लिये रवाना हो जाना। यहाँ आस-पास कुछ दिन रहना है। साथ में आवश्यक सामान भी लेते आना।"

तार के अनुसार गोविंद चल दिया। पूना-स्टेशन पर रामनाथ भी उसे मिल गए। रामनाथ की इस बात के विषय में गोविंद का कुछ भी तर्क न चला। उस बात को पूछने के लिये गोविंद अत्यंत अधीर बन गया था, और रामनाथ से मिलते ही उसने तत्काल यही प्रश्न किया। परंतु रामनाथ उसे घर चलने पर सब बातें कहने का वचन देकर साथ में ले आए।

विट्ठल-बाड़ी और हिंगने के बीच एक गाँव में, मकान किराए पर लेकर, रामनाथ रहने लगे। घर आने पर उनके मुख से आगामी कर्तव्य और गत रात्रि की घटना का वर्णन सुनकर गोविंद ने प्रश्न किया—"तब तो आप ग्रंथकार बनेंगे।"

रामनाथ—"बनना ही पड़ेगा। अन्यथा भानुप्रसाद हमें छका देगा। और बेचारे 'सुदर्शन' का इतने दिन किया हुआ श्रम व्यर्थ जाकर उसका लाभ वह धूर्त उठावेगा।"

गोविंद—"मैं तो जानता हूँ, आपने उससे पुस्तक को पूर्ण करने की शर्त-सी की है।"

रामनाथ—"तू ठीक कहता है, परंतु यह काम भी विना तेरी सहायता के न होगा।"

गोविंद—"मैं कब इनकार करता हूँ। तुम एक बार उसे लिख ही डालो, फिर तो मैं उसकी फ़ेयर कॉपी, पृष्ठांक डालना, बहुत-से पत्र इकट्ठे हो जाने पर उनको जमाकर पुस्तक बाँधना आदि महत्त्व के सभी काम मैं कर दूँगा। यदि तुम्हें लिखने में कष्ट होगा, तो उस समय मैं......।" उसने कहा—"वह बोली आदि वाक्यों की ख़ानापुरी भी कर दूँगा।"

रामनाथ—"फिर क्या पूछना है, पूरी ही मदद मिलेगी।"

गोविंद—"और भी जो कुछ करना होगा, सो करूँगा। परंतु मेरी फ़ीस का पूरा प्रबंध होना चाहिए, क्योंकि जब कोई मुझसे पत्र लिखवाता है, तो मैं उससे एकाक्षरी शब्द के दो आने और द्विरक्षरी शब्द के तीन आने, इस प्रकार बढ़ती के रेट से फ़ीस लेता हूँ। इसका विचार...।"

रामनाथ—"यह समय विनोद का नहीं है। मैं जो कुछ बोलता जाऊँ, उसे तू लघु लिपि में ( शार्ट हैंड ) लिखते जाना। क्यों, तुझे लघु लिपि याद है न? कल से काम शुरू होगा।"

रामनाथ के आ जाने पर तीन दिन बाद लक्ष्मी मनोहरलाल को लेकर हिंगने आई। साथ में रामेश्वर भी था।

यह कहने की आवश्यकता नहीं कि रामनाथ मनोहरलाल के समाचार लेने को नित्यप्रति जाया करते थे। एक दिन बात-बात में वे विमला के संबंध में कुछ कहने लगे। रामेश्वर को अपने इस गुप्त प्रेम के प्रकट हो जाने का बड़ा खेद और आश्चर्य हुआ। उसकी विचित्र आकृति देखकर रामनाथ ने कहा—"तुम्हारा निष्कपट प्रेम-भाव देखकर मुझे बड़ा आनंद हुआ। परंतु इसमें तुम्हारे एक-दो गुप्त शत्रु और हैं, वे विघ्न करेंगे।" रामेश्वर ने खिन्न होकर कहा—"हाँ, उन्हें भी मैं जानता हूँ। स्वयं सरदार साहब को यह बात पसंद न होगी। पिताजी का आज कई वर्ष पूर्व उनसे बिगाड़ हो है,चुका

और उसका निवारण होना भी अशक्य जान पड़ता है। यही सबसे बड़ी व्याधि है। अन्यथा विमला के समान सर्वगुणसंपन्न बालिका मैंने आज तक नहीं देखी। जिस भाग्यवान् का उससे सहवास होगा, वह सचमुच ही धन्यभाग हो सकता है।"

रामनाथ—"वह तुम्हें अहर्निश दृष्टिगोचर हो। उसका तुम्हें नित्य सहवास हो, वह तुम्हारी आजन्म संगिनी बने, ऐसी मेरी भी इच्छा है। किंतु यदि तुम बुद्धिमान् हो, तो अभी अपने प्रेम को गुप्त ही रखना। मुझे पूर्ण आशा है कि मनोहरलाल और सरदार साहब में फिर परस्पर मेल हो जायगा, इसके लिये मैं प्रयत्न भी कर रहा हूँ, परंतु उसमें तुम्हारी सहायता की भी पूरी-पूरी आवश्यकता है।"

रामेश्वर—"मैं किस योग्य हूँ, जो आपको सहायता दे सकूँ!"

रामनाथ—"तुमसे कई प्रकार की सहायता मिल सकेगी। मनोहर-लाल को भी अब आराम हो चला है। संभवतः वे शीघ्र ही स्वस्थ हो जायँगे। अभी-अभी वे होश में बातें करते थे।"

रामेश्वर ने निःश्वास त्यागते हुए कहा—"हाँ, परंतु बीच-बीच में वे फिर बिलकुल अभिष्ठ की तरह बड़बड़ाने लगते हैं।"

रामनाथ—"यह बात मुझे भी मालूम है, परंतु उनकी इन्हीं बातों से तो हमारा काम बननेवाला है। 'कैसा और क्यों' इसके विषय में अभी मुझसे कुछ भी न पूछो। मैं जैसा कहूँ, वह करते जाओ। उनका यह बड़बड़ाना उनकी कई वर्ष पूर्व लिखी हुई एक पुस्तक के संबंध में है। यह बात तुम्हें भी मालूम हो गई होगी। उसी पुस्तक के शेष भाग के संबंध में वे क्रमबद्ध बका करते हैं। कभी-कभी उनकी बातें बड़ी मार्मिक हुआ करती हैं; कितनी ही बातों को तो मैंने पास में बैठकर लिख लिया है, परंतु अब तुम यह काम हाथ में लो और उनके पास बैठकर प्रत्येक शब्द काग़ज़ पर लिखते जाओ और फिर मेरे पास भेज दो।"

रामेश्वर—"मैं नहीं समझ सकता, इससे क्या लाभ होगा ?"

रामनाथ—"वह लाभ तुम्हारे पिता के लिये कल्याणकारी होगा, पर उसके संबंध में मैं अभी कुछ नहीं कह सकता। जब तुम कहीं बाहर जाओ या अन्य किसी कारण से मनोहरलाल के पास न होगे, उस समय तुम्हारा काम तुम्हारी माता करेगी। उनसे भी मैंने कह दिया है।"

कई बहाने बनाने के बाद रामेश्वर ने कार्य-भार को अपने सिर लिया। दूसरे ही दिन से रामनाथ ने भी अपना कार्य आरंभ कर दिया। शेष भाग को लिखने के लिये उसके प्रकरण, शीर्षक और क्रमबद्ध लिखने के नोट्स मनोहरलाल के पास के थे ही। इसके सिवा रामेश्वर भी नित्यप्रति की बातें लिखकर दिया करता था। इन साधनों से रामनाथ का कार्य अच्छी तरह चला।

इसी प्रकार की सहायता रामनाथ को आवश्यक थी, क्योंकि गोविंद से इस काम में कुछ भी सहायता नहीं मिलती थी। आरंभ में तो गोविंद की ओर से सहायता मिलने के बदले काम में त्रास और घोटाला होता रहा।

इससे पाठकगण यह न समझ लें कि उसे इस कार्य के लिये चिंता न थी। नहीं, उसका उत्साह विशेष था। उसकी दृढ़ इच्छा थी कि इस कार्य में पूर्ण सहायता देते हुए पुस्तक में भी चतुरता का आभास कराने अथवा उसमें कुछ वाक्य ही अपनी ओर से बढ़ा देने के लिये वह सदा रामनाथ से आग्रह किया करता, और कभी-कभी अपनी इच्छा-पूर्ति के लिये वह काम बंदकर अड़ भी जाता था।

रामनाथ जितना लेखांश बोलते जाते थे, उतने से गोविंद का समाधान न होता, इस कारण कहिए अथवा उसके लघु लेखन के अभ्यास में शिथिलता आ जाने के कारण, परंतु उन चिह्नों से पूरा

लेख बनाते हुए वह अपनी अपूर्व भाषा-शैली का भी परिचय देता जाता था।

गोविंद की भाषा-शैली अथवा उसके भाषा-प्रभुत्व का थोड़ा-सा नमूना पाठकों के लिये हम यहाँ दिए देते हैं—

रामनाथ को कार्यारंभ किए आज तीसरा ही दिन था। प्रातः-काल के समय वाटिका में बैठे हुए रामनाथ गोविंद को लिखा रहे थे। एक नए प्रकरण की अभी शुरुआत हुई थी, और नवीन पात्र के लिय प्रथम बार ही परिचय देना था। वह पात्र एक कन्या थी, वह साधारण नहीं, वरन् एक सुकुमार और मोहिनी बालिका थी। इस पात्र की रूप-रेखा मनोहरलाल ने अस्पष्ट रूप से लिख ही रक्खी थी, और रामेश्वर की दी हुई टिप्पणियों के योग से उसमें विशेषता दिखाकर भली भाँति उसका दिग्दर्शन कराना था। रामनाथ ने कहना आरंभ किया—

"वह बालिका जब बैठकख़ाने में आई, उस समय उसके विनय ने उसके नैसर्गिक सौंदर्य में विशेषता ला दी था। उसके मुख पर ऐसी कुछ मोहिनी शक्ति राज रही थी कि दर्शक थकित रह जाते थे। उसकी सरल और नुकीली नासिका, सुंदर ओष्ठ, मोती के तुल्य दाँत, मंद मुसकान और उसके हाव-भाव किसी विरक्त को भी विमूढ़ बना सकते थे, तब हमारे रँगीले सरदार की तो बात ही क्या पूछना है। उनकी बुद्धि ही रफ़ूचक्कर हो गई।"

यह लेखांश रामनाथ ने कुछ शीघ्रता से कहा था। शब्द-रचना में कुछ फेर-फार करने के लिये वे ठहर गए और विचारने लगे। उनके ठहर जाने के बाद भी १० सेकंड तक गोविंद की पेंसिल बरा-बर चलती रही।

रामनाथ ने उसकी ओर देखकर पूछा—"क्या लिख लिया?"

गोविंद—"जनाब, कभी से बैठा हूँ।"

उँह करके गोविंद ने फिर एक बार कुछ चिह्न बनाया, और फिर भौंहें तानकर लेख की ओर देखा और पाँच सेकंड में ही फिर उँह कर दिया। रामनाथ ने चिढ़कर पूछा—"गोविंद! मैंने तुझे क्या लिखाया, ज़रा पढ़ना तो।"

सच पूछा जाय तो, गोविंद ने अभी तक वह अंश पूरा न लिख पाया था। उसने नीचे के काग़ज़ पर कुछ चिह्न बना रक्खे थे, परंतु वह वाक्य पूर्ण लिपि में लिखते हुए स्मरण-शक्ति पर भी उसे विशेष आधार रखना पड़ा था। रामनाथ ने फिर संतप्त होकर कहा—"गोविंद! पढ़ जल्दी से, क्या लिखा है?"

गोविंद—"बहुत ठीक! यह पढ़ता हूँ। सुनिए—

"वह कन्या जब बैठकख़ाने में……क्यों ठीक है न?"

रामनाथ—"हाँ, आगे?"

गोविंद—"मैं तो समझ ही गया था कि मैंने ठीक-ठीक लिखा है। इस लघु लिपि में कैसी ख़ूबी है, सतरें और बिंदियों की संज्ञाओं को ही याद रखना चाहिए, बिंदियों की तो मुझे याद है……।"

रामनाथ—"अपनी बिंदियों को मरने दे, प्रथम उस वाक्य को पूरा पढ़!"

गोविंद—"बिंदियों को कैसे मरने दूँ। वाह! अजी, इस लघु लिपि में तो इसी का महत्त्व है। विना बिंदी के हमारा लेख ही नष्ट हो जायगा। ज़रा विचार कर बोलिए साहब!"

रामनाथ—"अच्छा ले अब आगे पढ़, क्या हुआ, वह कन्या…।"

गोविंद फिर काग़ज़ पर पेंसिल चलाने लगा।"

रामनाथ—"अरे गोविंद!"

गोविंद—"भूला, भूला। हाँ, वह कन्या बैठकख़ाने में आई।"

रामनाथ एकदम कुर्सी पर से उठ खड़े हुए और कहने लगे—"देख! यदि तुझे ऐसा ही करना है, तो साफ़ कह दे। नहीं तो

दूसरा लेखक बुलाता हूँ !" गोविंद ने नम्र होकर कहा—"एक बार चूक गया, तो क्या हर बार ही चूका करूँगा। सुनिए, अगला भाग बिलकुल ठीक सुनाता हूँ—

"वह कन्या जब मुख्य बैठक में आई, तो उसके वय ने......। नहीं —विनय ने......उसके नैसर्गिक......?"

रामनाथ बेतरह संतप्त हो उठे और कहने लगे—"गोविंद ! अपना लघु लेखन पूरा कर। तेरी बातों में लगकर तो मेरा मस्तिष्क ही घूमने लगा।" गोविंद ने हँसकर कहा—"कितनी दूर तक घूमेगा?"

रामनाथ की भौंहें पुनः चढ़ गईं। थोड़ी देर में शांत होने के बाद उन्होंने कहा—"अच्छा, मैं अभी इस वाटिका में घूमता हूँ, तब तक तू इसे शुद्ध लिख रखना। ठीक-ठीक लिखना। अन्यथा मुझे दूसरा क्लर्क बुलाना पड़ेगा।"

गोविंद—"बहुत ठीक। आप पाँच मिनट में घूमकर आइए, तब तक यह अंश बिलकुल ठीक और चक्क लिखे रखता हूँ।"

लगभग आठ मिनट में रामनाथ लौटे और गोविंद ने बड़ी ठसक से वह काग़ज़ उनके सामने रख दिया।

रामनाथ ने कहा—"क्या ठीक-ठीक लिख लिया?"

गोविंद—"कभी से, न लिखने को क्या हुआ। तुम मेरी ओर देखते रहते हो, इसी से मुझे न-जाने क्या-क्या विचार होने लग जाते हैं। परंतु जब अकेला होता हूँ, तो बड़े-बड़े विख्यात लेखकों के भी कान काट लेता हूँ।"

रामनाथ—"अच्छा तो पढ़, देखूँ क्या लिखा है?"

गोविंद पढ़ने लगा—"वह कन्या जब मुख्य बैठक में आई, उस समय उसके विनय से उसके नैसर्गिक सौंदर्य में विशेषता होती ही दीखती थी। उसके मुख पर ऐसी कृष्णवर्णी छटा दीख पड़ती थी कि देखनेवाला ठंडा पड़ जाता था। उसकी वह सीधी और झोंकदार

नासिका, बिंबाफल के समान ओष्ठ और पीले-पीले दाँत, उठंगन मुश्कियाँ, उसका वह भीषण मुख और हाथ-पाँव किसी वीर को भी क्षण-भर में दिग्गज बना सकते थे। तब हमारे रंगीन सरदार की तो बात ही क्या पूछना है। उनकी शुद्धि हा लफ़ूशकर हो गई।"

इस लेखांश को गोविंद ने बड़ी फुर्ती से पढ़ा। परंतु उसका यह पांडित्य देखते ही रामनाथ झल्ला उठे। कुछ देर बाद वे कहने लगे—"ठीक है, काम हो गया! जा और एक तार का फ़ार्म लेकर आ।"

गोविंद—"क्या पुस्तक लिखने का काम बंद रखना है? या बंबई जाने का विचार है।"

रामनाथ—"जो कुछ होगा, सो करूँगा। पहले तू एक तार का फ़ार्म लाकर दे। मैं प्रो० देशबंधु को लिखकर एक लघु लेखक बुलवाता हूँ।"

गोविंद—"और मैं? क्या मेरा पांडित्य व्यर्थ गया?"

रामनाथ—"अपने पांडित्य को चूल्हे में जाने दे। मैं तेरे इस मूर्खतामय हास्य से संतुष्ट हो उठा हूँ।"

गोविंद—"संतप्त होने को क्या हुआ? क्या मैंने तुम्हारा बैल बाँधा है?" रामनाथ ने तमककर कहा—"बैल नहीं तो क्या है? एक भी वाक्य पूरी तरह न लिखा। और, कुछ-का-कुछ बनाकर अनर्थ कर दिया।"

गोविंद—"मैं तो समझता हूँ कि किसी एक वाक्य का अर्थ थोड़ा बहुत मैंने बदल दिया है, परंतु इसमें बिगाड़ा क्या! बताइए, कहाँ अर्थ का अनर्थ हुआ है?"

रामनाथ—"उसके नैसर्गिक सौंदर्य में विशेषता होती दीखती थी! क्यों! मैंने ऐसा कहा था 'उसके नैसर्गिक सौंदर्य में विशेषता कर दी थी।' यों कहा था! उसके मुख पर काला रंग ऐसा लगाया गया कि देखनेवाला ठंडा पड़ जाता था। इस वाक्य में तो तूने कमाल

ही कर डाला। उसकी वह सरल और नुकीली नाक के बदले 'उसका सीधा और झोंकदार नाक।' बुद्धि के बदले शुद्धि और रफूचक्कर के बदले लफूशक्कर अर्थ का अनर्थ नहीं, तो और क्या है ? सभी वाक्य इस प्रकार लिखे होंगे।"

गोविंद—"मैं जो कुछ कहता हूँ, उस पर क्रोधित न हूजिए। आप समझते हैं कि मुझे लघु लेख नहीं आता, परंतु वास्तविक रीति से आप ही उसका मर्म नहीं समझ सकते हैं।"

रामनाथ—"पिटमैन की लघु लिपि तेरी अपेक्षा मुझे ही अच्छी तरह आती है, और मैंने उससे प्रशंसा-पत्र तक प्राप्त किया है, समझा!"

गोविंद—"परंतु मेरी लिपि बिलकुल ही पिटमैनी कला है! कितनी ही संज्ञाएँ तो ख़ास गोविंदप्रसाद-कृत हैं। उस पद्धति का यह नमूना है।"

रामनाथ—"चक्कर को शक्कर लिखना ख़ासी सुधारणा का नमूना है।"

गोविंद—"यह तो शुद्ध लेखन की भूल है। जल्दी में ऐसा होता ही है।"

रामनाथ—"और नोकदार का झोंकदार भी सुधारणा ही जान पड़ती है।"

गोविंद—"उँह, उसमें क्या बिगड़ा! ध्वनि साम्य तो है। लघु लेखन का मतलब क्या है ? ध्वनि के अनुसार लिखना-मात्र ही ?"

रामनाथ—"अभी तेरी ध्वनि निकालनी होगी, तभी समझ में आवेगा। यहाँ से चलता हो, और जाकर वह तार दे आ।"

गोविंद वहाँ से तार-ऑफ़िस को चल दिया। दूसरे ही दिन बंबई से नया लेखक भी आ गया, और रामनाथ का कार्य बराबर चलता रहा। लघु लेखक के पद से च्युत गोविंद दूसरा कुछ काम न होने से मोती को साथ लेकर पास के छोटे-छोटे गाँवों में घूमकर आनंद मनाने लगा।

---

# त्रयोदश परिच्छेद

## गुमनाम पत्र

आस-पास के गाँवों में घूमकर गोविंद तो आनंद मना ही रहा था, किंतु उसके सिवा एक और प्राणी भी उसी भाँति आनंद मना रहा था।

रामेश्वरप्रसाद नित्यप्रति मनोहरलाल की अचेतनावस्था में बोले हुए शब्दों के नोट देने के लिये रामनाथ के पास जाया करता था, और काग़ज़ देकर वैसे ही वापस न लौटते हुए, एक मील आगे तक भी टहलने चला जाता था। उस स्थान पर एक वाटिका थी, किंतु वह पुराने ढर्रे की होने से उसमें न तो गमलों में पौधे ही लगे हुए थे, न बैठने को ही कहीं बेंचें रक्खी गई थीं। उस वाटिका में कहीं-कहीं वृक्षों का इतना समूह था कि सूर्य-रश्मियों का भी उसमें प्रवेश नहीं हो सकता था। इसी प्रकार के छायादार भाग के पास पहुँचकर रामेश्वर ठहर जाता, और एक नवपल्लवाच्छादित आम्र-शाखा का आश्रय लेकर वह भीतर प्रविष्ट हो जाता था।

इस प्रकार चुराकर दूसरे की वाटिका में घुसना पाप है या अपराध, इस बात को रामेश्वर अच्छी तरह जानता था। इसके सिवा यह बाग़ किसका है, यह बात भी वह अच्छी तरह जानता था। तथापि नित्यप्रति वह गुपचुप उस बाग़ में पहुँच ही जाता। न-जाने ऐसी क्या मोहिनी शक्ति यहाँ थी, जो रामेश्वर को इस प्रकार वशीभूत कर लेती थी। परंतु ज्यों ही रामेश्वर वहाँ पहुँचा कि तत्काल ही वहाँ उसे विमला के दर्शन हो जाते थे। इस बात को हम अच्छी तरह जानते हैं। पाठकगण! आप भी इससे समझ



परंतु ज्यों ही रामेश्वर वहाँ पहुँचा कि तत्काल ही वहाँ उसे विमला के दर्शन हो जाते थे।

( पृष्ठ-संख्या १०० )

सकते हैं कि वह वाटिका किसकी थी। अस्तु, इन उभय प्रेमियों की यह गुप्त भेंट किस आशय से हुआ करती थी, इस बात का स्पष्टीकरण करना शिष्टता की मर्यादा से परे है। किंतु हम इतना अवश्य कह सकते हैं कि वे उभय प्रेमी कुछ देर प्रेमालाप करते हुए इधर-उधर टहलते रहते थे। किसी १५ वर्ष की बाला और बाईस-तेईस वर्ष के युवक में किस विषय की बातें हुआ करती हैं, इस बात के बतलाने की आवश्यकता नहीं है। न हम यही बतला सकते हैं कि विमला उससे इस प्रकार क्यों मिलती है? और ऐसी बातों का प्रकट करना शिष्टाचार के विरुद्ध धूर्तता का कार्य है। परंतु एक धूर्त ने एक दिन उन उभय प्रेमियों को इस प्रकार गुप्त रूप से प्रेमालाप करते देख लिया। वह मनुष्य केवल धूर्त ही न था, बरन् इस प्रेमालाप से अपना स्वार्थ साधनेवाला नीच भी था। पाठकगण! वह धूर्त और कोई न होकर हमारे पूर्व परिचित सरदार साहब के कारभारी भानुप्रसाद ही थे।

भानुप्रसाद ने विमला को अपनी आराध्य देवी बना रक्खा था। क्यों न हो! उसका सौंदर्य ही इतना अपूर्व था कि वह वृद्ध मनुष्य को भी मोहित कर सकता था। किंतु विमला के सौंदर्य की अपेक्षा उसके द्वारा प्राप्त होनेवाली संपत्ति का ही भानुप्रसाद को अधिक मोह था। उन्हें स्वप्न में भी यह कल्पना न थी कि विमला इस प्रकार किसी युवक पर मोहित हो जायगी, और सरदार साहब के नियमानुसार वैसा होना भी अवश्य ही था। परंतु आज का ढंग देखकर तो उनका मन ही विचलित हो गया, और उन्होंने अपनी भावी आशाओं पर बाँधे हुए मनोरम प्रासाद को एकदम विनष्ट होते देखा।

किंतु ऐसी क्षुद्र विघ्न-बाधाओं से डरनेवाले भानुप्रसाद न थे। उस बाधा से ही लाभ उठाकर अपना दाँव साधने की उन्होंने युक्ति

निकाली। वह युक्ति उनकी नीचता के ही योग्य थी। भानुप्रसाद ने विमला और रामेश्वर पर कलंक लगाने का निश्चय किया।

कुछ ही दिन के बाद सरदार साहब को एक गुमनाम पत्र मिला। पत्र को पढ़कर सरदार साहब चकित हो गए, किंतु उन्हें पत्र के लेख पर विश्वास न हुआ।

उन्हें अपने गृह-प्रबंध पर पक्का विश्वास था, तथापि उन्होंने इस बात की चौकसी करने के लिये विमला को पुकारा—

उस समय सरदार साहब पुस्तकालय में बैठे थे। सामने की टेबुल पर नियमानुसार पुस्तकें फैली हुई थीं। उनकी मुख-चर्या देखते ही विमला ने पहचान लिया कि आज अवश्य कुछ गड़बड़ है।

वृद्ध महाशय का विमला पर हार्दिक प्रेम था। वे उसे अपनी पुत्री के तुल्य समझते थे। विमला के आते ही उनके मुख का भाव बदल गया। उन्होंने विमला को पास में बुलाकर कुर्सी पर बिठाया।

वह हँसते हुए पूछने लगी—"बाबा! आज आप इतने गंभीर क्यों है?"

सरदार०—"क्या आज मैं गंभीर दीख रहा हूँ, अच्छा ठीक है, परंतु तुझसे एक बात पूछना है। क्या मुझसे अज्ञात तेरा कोई गुप्त प्रेमी है?"

सिर उठाकर उसने सरदार साहब की ओर देखा, और हँसने लगी। उसने उत्तर दिया—"आपसे अज्ञात मेरे अनेक प्रेमी हैं। अभी उस दिन मौसी के साथ नासिक गई थी, वहाँ भी मेरी कई लोगों से पहचान हो गई है। परंतु आपको आज यह प्रश्न क्यों करना पड़ा?"

विमला मुँह फेर दूसरी ओर देखने लगी, क्योंकि वह चाहती थी कि मेरे मुख के भाव को वे न पहचान सकें। कारण, मुखाकृति ही अंतःकरण का आदर्श है।

सरदार०—"बहुत-से प्रेमी तो होंगे ही, परंतु उनमें किसी से विशेष प्रेम है क्या ?"

विमला—( कुछ विचार करने का भाव बना ) "विशेष प्रेम कैसा ?" सरदार साहब ने उसे आगे बोलने ही न दिया, और क्रोधित होकर उन्होंने कहा—"मैं अब खुले-खुले पूछता हूँ ! क्या किसी युवक से तेरा गुप्त रीति से प्रेम हो गया है ?"

विमला को एकदम हँसी आ गई। वह हँसी को रोककर पूछने लगी—"बाबा ! मेरे प्रेमी युवक नहीं तो क्या वृद्ध होंगे ?"

इस उद्दंडता-पूर्ण उत्तर से वृद्ध का क्रोध भड़क उठा। वे गरज-कर कहने लगे—"मेरे प्रश्न का यह सरल उत्तर नहीं है ! क्या रामेश्वर-नामक युवक से तेरा विशेष प्रेम नहीं है ?"

इस प्रश्न को करने के साथ ही वे उठ खड़े हुए। विमला भी साथ ही उठ खड़ी हुई। वृद्ध ने फिर पूछा—"क्या यह बात सच है ?"

अब की बार विमला घबरा गई, उसके नेत्रों से अश्रु-बिंदु टपकने लगे। परंतु वह धीर थी। हृदय थामकर उसने उत्तर दिया—"हाँ ! रामेश्वर से मेरा अधिक प्रेम है। नासिक से आते समय गाड़ी के पटरी से उतर जाने के कारण बड़ी दुर्घटना हुई। उसी संकट से रामेश्वरप्रसाद ने मुझे बचाया, और मैं . मैं......।"

वृद्ध की रक्तवर्ण मुखाकृति देख विमला चुप रह गई।

वृद्ध ने पूछा—"तब क्या कृतज्ञता बुद्धि ही तुम्हारे प्रेम का कारण हुई है ! पर तूने अपनी वंश-मर्यादा पर भी कुछ विचार किया है ? क्या कुल शील आदि देखने की आवश्यकता नहीं है ?"

विमला ने कहा—"कुल, शील और वंश-मर्यादा का भी मैंने पूर्ण विचार कर लिया है। वे हमारे ही समान एक उच्च कुल के हैं। वे विद्वान्, उदार और शूरवीर भी हैं। तथा......।"

सरदार साहब बीच में ही बोल उठे और उससे बाग़ में तेरी भेंट भी होती है। तुम्हारा प्रेम इस सीमा तक पहुँच् गया ? ऐं, क्या यह बात ठीक है ? यद्यपि विमला का सारा शरीर काँप रहा था, परंतु फिर भी ढिठाई से उत्तर दिया—"हाँ, ठीक है।"

सरदार०—"और ऐसा कहने में तुझे ज़रा भी लाज नहीं आती ?"

विमला—"इसमें लज्जा कैसी ? ( खिसियाते हुए ) और लज्जित होने के लिये इसमें बात ही कौन-सी है ? रामेश्वरप्रसाद विद्वान्, उदार और शूर है। यहाँ तक कि उनमें मनुष्योचित सभी गुण वर्तमान हैं। मुझे तो इस बात पर बड़ा गर्व है कि उनका मुझ पर असीम प्रेम है।"

वृद्ध देखते ही रह गए, और कुछ न बोल सके ; क्योंकि उन्हीं के आश्रय में पली हुई विमला आज उन्हें इस प्रकार उत्तर देगी, इस बात की उन्हें स्वप्न में भी कल्पना न थी। इतने पर भी उन्हें इस बात पर विश्वास न हुआ और मनस्तुष्टि के लिये वे फिर पूछने लगे—

"तो क्या ये सब बातें सच हैं ? ऐसा था, तो तूने अब तक मुझसे क्यों छिपाया ? याद रखना, तेरी ये बातें मुझे बिलकुल ही पसंद नहीं हैं !"

विमला ने पूछा—"क्यों-क्यों !" उससे आगे न बोला गया। कुछ देर के बाद उसने फिर कहा—"वास्तव में मेरी यह भूल हुई, परंतु इस बात को प्रकट करने की युक्ति ध्यान में न आने से ऐसा हुआ। यह बात सबसे प्रथम आपको ज्ञात होनी चाहिए थी, परंतु अब मैं आपसे क्षमा-प्रार्थना करती हूँ। समय आते ही मैं आजकल में ही किसी प्रकार आपसे यह बात कहती, परंतु अब अधिक क्रुद्ध होकर आप मन को दुःख न पहुँचाएँ।"

इस नम्रता से वृद्ध का क्रोध शांत हो गया, और वे विमला को पुचकारकर कहने लगे—"बेटी विमला! मैं तुझे क्षमा करता हूँ, परंतु एक शर्त पर।"

विमला—"किस शर्त पर?"

सरदार०—"वह शर्त यही कि अब रामेश्वर का प्रेम छोड़ दे!"

विमला—"क्या मैं उनका प्रेम छोड़ दूँ?"

सरदार०—"हाँ, क्या मेरी शर्त मंज़ूर है?"

विमला मन मसोसती हुई अलग हो गई, और क्षण-भर के बाद कहने लगी—"नहीं, यह बात त्रिकाल में भी नहीं हो सकती। उनका मुझ पर और मेरा उन पर...।"

सरदार०—"क्या बोल रही है, और किससे बोल रही है, इसका भी तुझे कुछ ज्ञान है? क्यों री! इतना परिश्रम कर तुझे शिक्षा-दीक्षा दी। उसी का यह बदला तूने चुकाया! स्कूल और कॉलेजों में भी पढ़नेवाली लड़कियों को ये प्रपंच-पूर्ण बातें नहीं आतीं। तू कहती है, मेरा उन पर प्रेम है और होगा। तू कल से किसी भिखारी पर प्रेम करने लगेगी क्यों? मेरी इस विशाल संपत्ति की आशा से ही तेरे प्रेम में अंकुर फूटे होंगे? मैं तुझे साफ़ सुनाए देता हूँ कि अब तू इस प्रेम के फंदे को बिलकुल छोड़ दे!"

विमला ने हँसकर कहा—"यह कैसे हो सकता है?"

अब की बार वृद्ध का कोप अनिवार्य हो गया, और उन्होंने कड़ककर कहा—"क्या तू मेरी बात नहीं मानेगी? अच्छा ठीक है, अब मुझे भी तेरी कुछ आवश्यकता नहीं। (टेबुल पर हाथ पटककर) बचपन से पुत्री की भाँति पाल-पोसकर बड़ा किया, और तेरे सिवा मैं अपना कोई नहीं समझता। अपनी संपत्ति का अधिकांश भाग मैंने तुझे देना विचारा है, और बिल में भी यह बात लिख दी है।" वृद्ध कुछ ठहर गए, परंतु उनका क्रोध बढ़-सा ही गया। वे फिर कहने लगे—

"यदि मेरी बात न सुनेगी, तो एक पाई भी तुझे नहीं मिल सकेगी। क्यों, अब भी रामेश्वर की बात छोड़ती है या जन्म-दरिद्री बनती है?" विमला ने उसी प्रकार धृष्टता-पूर्वक उत्तर दिया—"नहीं, कभी नहीं। रामेश्वरप्रसाद ने मेरे प्राण बचाए हैं। उनका मुझ पर निष्कपट प्रेम है, वह किसी के कहने-सुनने अथवा लोभ किंवा धमकाने से तिल-भर भी कम न होगा। मेरा प्रेम उनसे द्रव्यादि के लोभ से नहीं!"

वृद्ध का क्रोध और भी भड़क उठा। वे उठकर इधर-उधर टहलने लगे। कुछ देर बाद उन्होंने कहा—"विमले! आज तक मेरी इच्छा के विरुद्ध तूने कभी कुछ न किया। आज ही तुझे ये छल-प्रपंच कहाँ से आ गए? ज़रा विचार तो कर! जैसा तेरा निश्चय है, वैसा मेरा भी है। उस भिखारी-छोकरे से तेरा विवाह कर मैं कभी अपनी मान-मर्यादा को न घटाऊँगा। एक बार तू फिर विचार कर ले।"

विमला—"बाबा! आज तक मैंने प्रत्येक विषय में प्रति समय ही आपकी आज्ञा मानी है, किंतु इस विषय में आप मुझसे विशेष आग्रह न कीजिए। रामेश्वरप्रसाद पर मेरा निष्कपट प्रेम है। उनकी मूर्ति इस हृदय-संपुट में सुरक्षित रूप से विराज गई है। वह आजन्म न निकल सकेगी। कहिए, मैं आपकी बात को कैसे मान लूँ?"

सरदार०—"विमला! तू अब यहाँ से चली जा, और एक बार स्वस्थ होकर मेरी बात पर फिर विचार कर। परंतु तुम्हारी गुप्त भेंट आज से ही बंद होनी चाहिए। मेरी आज्ञा के विना घर से बाहर पाँव भी न रखना। मेरी बात स्वीकार करने में ही तेरा कल्याण है। मैं फिर कहता हूँ कि तू मेरी बात मान ले। यदि अभी न सुनेगी, तो फिर तेरा भाग्य। परंतु मैं तुझे चार पाई भी न दूँगा। इस बात को ख़ूब सोच लेना।"

विमला वहाँ से चली गई और उसी दिन से वह क़ैदी के समान घर में रहने लगी। सरदार साहब ने पहली पाचिका को छोड़कर एक

नई स्त्री को उसकी जगह नौकर रख लिया था। ज्यों ही विमला कहीं बाहर निकली कि वह स्त्री छाया की तरह उसके पीछे हो जाती थी। उसे ऐसी आज्ञा ही दी गई थी। वह स्त्री भी स्वयं बड़ी धूर्त थी। आठ दिन रह-कर विमला की मौसी भी चली गई। अब बेचारी विमला से कोई बातें तक करनेवाला न रहा। उसने अच्छी तरह जान लिया था कि बाबा क्रुद्ध हो गए हैं। इस कारण उसका निश्चय भी न टल सकेगा।

ऐसी दशा में विमला के दुःख की कल्पना पाठकगण स्वयं कर सकते हैं। उसे ज्ञात हो गया था कि यदि उनकी बात न मानूँगी, तो वे सचमुच ही मुझे एक पाई भी न देंगे। परंतु इससे उसने अपने प्रेम में कुछ भी न्यूनता न आने दी। सारे संसार की संपत्ति भी यदि कोई उसे देना चाहता, तो भी वह रामेश्वर को क्षण-भर के लिये न भूल सकती थी।

इस घटना के दूसरे ही दिन उसने सब वृत्तांत रामेश्वर को लिख भेजा, और बड़ी उत्सुकता से वह उत्तर की प्रतीक्षा कर रही थी; किंतु उत्तर नहीं मिला। उसे एक-एक पल युग के समान बीतने लगा। पत्र को भेजे हुए आज चार दिन हो गए, परंतु रामेश्वर का उत्तर न मिला।

अब तो विमला को यह चिंता अलग ही सताने लगी। पत्र का उत्तर नहीं मिला; इसका कारण क्या है? वृद्ध क्रोधित हो गए हैं, और वे अपनी संपत्ति में से एक पाई भी न देंगे। इत्यादि बातें पत्र में लिखने से तो कहीं उनका विचार न बदला गया हो? थोड़ी देर के बाद वह फिर सोचने लगी नहीं, यह शंका व्यर्थ है और यह बात भी अशक्य है। ऐसे क्षुद्र विचार उनके मन में कभी उत्पन्न न होंगे। मेरी संपत्ति के लिये उन्होंने प्रेम नहीं किया है, क्योंकि उन्हें मुझ पर विश्वास है। फिर उत्तर क्यों नहीं मिला। इस प्रकार उसके चित्त की शांति भंग हो गई।

---

# चतुर्दश परिच्छेद

## दुःखों का आक्रमण

वस्तुतः विमला का पत्र रामेश्वर तक न पहुँच सका था, क्योंकि सरदार साहब के सभी लोगों की सम्मति हो गई थी कि उसका रामेश्वर से किसी भी प्रकार का पत्र-व्यवहार न होने दिया जाय। न उसे रामेश्वर-संबंधी कोई बात ही ज्ञात होने दी जाय। इस नियम की कल्पना भानुप्रसाद के मस्तिष्क की उपज थी। उसका समर्थन सरदार साहब की ओर से भी हो गया था। यद्यपि वह पत्र विमला ने एक विश्वास-पात्र नौकर के हाथ भेजा था, किंतु वह नौकर भी भानुप्रसाद की मंडली में सम्मिलित रहने के कारण वह पत्र लेटर-बक्स में न डाला जाकर भानुप्रसाद के हाथ में पहुँच गया।

इधर विमला पत्र के उत्तर की प्रतीक्षा कर रही थी, उधर रामेश्वर नित्यप्रति वाटिका में विमला को न पाकर चिंतित होता। नित्यप्रति रामेश्वर सायंकाल के समय संकेत-स्थल पर पहुँचकर विमला के लिये इतनी उत्सुकता से प्रतीक्षा करता था कि यदि कोई उसकी चर्या को देखता, तो अवश्य पागल कहता। परंतु प्रेम के लिये मनुष्य क्या नहीं कर सकता? कुछ देर प्रतीक्षा कर रामेश्वर निराश हो लौट जाता।

इस प्रकार कई दिन बीत गए। रामेश्वर बिलकुल हताश हो गया। अंत को एक दिन उसने ये सब बातें रामनाथ से कहीं। उन्होंने सब बातों का पता लगाने का विश्वास दिलाया था। एक दिन रामनाथ गोटा-किनारी बेचनेवाले का स्वाँग बना बिट्ठल-बाड़ी को गए। वहाँ

सरदार साहब के नौकरों से पहचान की, और सब बातें धीरे-धीरे जान लीं।

जब रामेश्वरप्रसाद को यह सब घटना विदित हुई, तो वह बड़ा क्रुद्ध हुआ। उसने स्वयं बिट्ठल-बाड़ी जाकर विमला पर मेरा प्रेम है, और उससे मुझे मिलना है, यह बात वृद्ध के सम्मुख खुले शब्दों में कह देने का विचार किया। परंतु रामनाथ ने उसे ऐसा करने से मना कर दिया था। इतने पर भी उसने एक न सुनी। तब रामनाथ ने बड़ी युक्ति से उनका विचार बदला और समझाया कि ऐसे अविचार और शीघ्रता से इतना श्रम उठाकर रचा हुआ व्यूह व्यर्थ ही नष्ट हो जायगा। अतः अभी और कुछ दिन धैर्य धारण करो। थोड़े दिनों में तुम्हारी मनोकामना पूरी हो जायगी। रामेश्वर ने खिन्न होकर कहा—"आप क्या कह रहे हैं, शीघ्रता न करो ? मेरे दुःख की आपको कल्पना भी नहीं है। अन्यथा आप कभी ऐसा उपदेश न देते। अहाहा ! विमला !" इतना उत्तर देकर रामेश्वर चल दिया।

यद्यपि विमला से भेंट होने की आशा न थी, तथापि नित्यप्रति रामेश्वर बाग़ की ओर जाता, और अपने प्रेमालाप के स्थान पर पहुँचते ही उसके मन को संतोष हो जाता। वह वहाँ बैठकर आशा किया करता था कि न-जाने कब विमला के दर्शन होंगे ! परंतु उसकी आशा व्यर्थ होती। प्रेमातिशय की रूप-रेखा इसी ढंग की होती है।

इधर गोविंद भी मोती को साथ लेकर गाँवों में घूमता हुआ आनंद मना रहा था। किंतु रामेश्वर के बिट्ठल-बाड़ी में जाने की बात जब से उसे विदित हुई, तब से मुख्य कर वह उस ओर न जाता था, क्योंकि उसे शिष्टाचार ख़ूब आता था। इस संबंध में वह एक दिन रामनाथ से कहने लगा—"उस बाग़ की ओर मैं जान-बूझकर ही नहीं जाता, क्योंकि यदि उस ओर गया, और विमला ने मुझे देख लिया, तो फिर रामेश्वर की आशा पर पानी फिर जाने की संभावना है।"

रामनाथ—"आजकल की लड़कियाँ सभ्यता को ही अधिक पसंद करती हैं। मैं तेरी बात को मानता हूँ, परंतु अभी वह समय नहीं आ गया है। अस्तु, तेरा उधर न जाना ही अच्छा है।"

जब गोविंद को यह बात विदित हो गई कि आजकल विमला बाग़ में नहीं आती, तब उसने निश्चय किया कि अब उस ओर जाने में कोई हानि नहीं है। एक दिन मोती को साथ लेकर वह बाग़ में पहुँचा।

बाग़ में प्रत्येक स्थान पर बड़ी-बड़ी झाड़ियाँ थीं, उनमें क्या-क्या आनंद-दायक बातें हैं, उन्हें देखने के लिये वह झाड़ी में घुसा। कुछ ही दूर पर सहसा किसी के चिल्लाने की आवाज़ उसे सुनाई दी। वह ध्यान-पूर्वक सुनने लगा। पाँच ही मिनट के पश्चात् उसने निश्चय किया कि यह किसी की लड़ाई हो रही है। जाकर देखूँ कि क्या मामला है? इस प्रकार वह निश्चय कर ही रहा था कि इतने में लाठियों का खटाखट शब्द और दुःख की चीत्कार के साथ किसी वस्तु के पानी में गिरने का शब्द सुनाई दिया।

गोविंद चकित हो गया, और तत्काल मोती को सीटी का संकेत-कर घटनास्थल की ओर चल दिया।

तीन ही चार मिनट में वह झाड़ी को पारकर मैदान में आ पहुँचा। देखा तो सामने एक छोटी-सी तलैया थी। दलदल के कारण तलैया में कीचड़ अधिक था। गोविंद ने चारों ओर देखा, किंतु कोई मनुष्य न दिखाई दिया। विचार करते-करते ज़मीन पर उभरे हुए पाद-चिह्नों की ओर उसका ध्यान गया। उन्हीं के अनुसंधान में वह आगे बढ़ता गया। वे चिह्न तलैया के बाँध तक बने हुए थे।

तलैया के किनारे पहुँचते ही वहाँ का दृश्य देख गोविंद घबरा गया। यद्यपि तलैया में कीचड़ अधिक था, तथापि उसमें कोई वस्तु तैरती दिखाई पड़ी, वह तत्काल पानी में उतर पड़ा।

घुटनों तक गया, फिर आगे कमर तक बढ़ा। अंत को गले तक गया, तो भी उसे वह वस्तु हाथ न लग सकी। गोविंद को तैरना याद न था, तो भी साहस कर एक-दो पाँव और आगे बढ़ा। उसने वह वस्तु पकड़ ली, और युक्ति से खींचकर उसे किनारे पर लाया। अभी तक उसने उस वस्तु की ओर पूरी तरह देखा भी न था, किंतु ज्यों ही किनारे पर लाकर उस ओर को मुँह किया, तो उसे वह नर-देह जान पड़ी। जब उसने उसको पहचान लिया, तब तो वह निराश हो ज़मीन पर बैठ गया। वह देह पानी में तैरती हुई वस्तु और कोई न होकर बेचारी विमला का उपास्य देव रामेश्वरप्रसाद ही था।

रामेश्वर मूर्च्छित था, उसकी यह दशा देख गोविंद कर्तव्यमूढ़ बन गया। तथापि उसने धैर्य-पूर्वक सारे शरीर को देखा, तो कितने ही घावों से रक्त बह रहा था। किसी ने पहले उसे अच्छी तरह पीटकर फिर तलैया में डाल दिया था।

उन घावों को धोकर गोविंद उन पर पट्टी बाँधने लगा। उस समय मोती पास में बैठा हुआ रो रहा था; क्योंकि रामेश्वर से उसकी बड़ी पहचान हो गई थी। इसी से उसने रामेश्वर को पहचान लिया।

गोविंद ने पट्टी बाँधते-बाँधते कहा—"मोती! रामेश्वर के लिये तुझे भी दुःख होता है, यह मैं समझ गया। पर अब आगे क्या करना चाहिए?"

बेचारे मोती के नेत्रों में फिर आँसू भर आए। कुछ देर के बाद उसने अपने पिछले मार्ग की ओर मुँह फिराकर पूँछ हिलाई। उसकी चर्या देख गोविंद ने कहा—"मैं समझ गया! तेरी इच्छा किसी से सहायता लेने की है! और यह ठीक भी है, परंतु यहाँ सहायता कैसे मिलेगी? किंतु तू भी कुछ कम नहीं है। साधारण मनुष्य के समान तुझमें भी बुद्धि है, अच्छा, देखता हूँ, तू क्या काम बनाता है?" तत्काल गोविंद ने अपनी जेब से काग़ज़-पेंसिल निकालकर उस पर

लिखा—"सहायता की बड़ी आवश्यकता है। जो कोई इस पत्र को देखे, वह तत्काल ही कुत्ते के साथ-साथ चला आए। कुत्ता सरदार साहब के बाग़ की तलैया के पास निश्चित स्थान पर ले आवेगा। बड़ा दुर्घट प्रसंग है।"

काग़ज़ को मोड़कर गोविंद ने मोती के सामने रख उसके शरीर पर हाथ फेरते हुए कहा—"मोती! यह चिट्ठी है, इसे लेकर अपने आए हुए मार्ग से जा, और जो कोई मनुष्य मिले, उसके सामने यह चिट्ठी डाल देना, और खड़ा रहकर उसे यहाँ साथ ले आना।"

गोविंद अपना सिर हिला-हिलाकर सब बातें सुन रहा था। जब कभी मस्तिष्क में कुछ विचार होता, तो मोती सिर हिलाया करता था। गोविंद का सँदेसा सुन लेने के बाद एक बार वह फिर रोया, और उसने अपनी पूँछ हिलाई। उसे देख फिर गोविंद ने कहा—"अच्छा, अब तू जा।"

चिट्ठी लेकर मोती चल दिया। इधर रामेश्वर का श्वासोच्छ्‌वास शुरू करने के लिये गोविंद का प्रयत्न बराबर चल रहा था। लगभग बीस मिनट के बाद ही उसे किसी मनुष्य के बोलने की आवाज़ सुनाई दी। उसने सिर उठाकर उस ओर देखा, तो मोती के पीछे-पीछे तीन घबराए हुए किसान चले आ रहे हैं!

उन लोगों में से एक ने गोविंद को देखकर कहा—"कोणी मनुष्य दिसतो" उसकी बात सुन दूसरे ने कहा—"भी! म्हनत होतोन कि ह्या कुत्र्या ने किती नम्रते ने तेपत्र खालीं टाकलें। ग्यावेली भी पत्र वाची न होतो तेव्हां हा किती सा आश्चर्य दाखवीत उभा होता। ह्याच सारखी चर्या चांगल्या मनुष्यांत सुद्धां दिसत नाहीं! समजलोंसा।"

दोनों किसान—"बुआ! आहली कुढे मनुष्य आहोंत। अम्हाला काय येते बरें। तू शिकला होतास म्हणून तू वाचले आणि अंम्ही इथे दौडून आलो।—बरें अण हे यहा तो मनुष्य काय म्हणत आहे।"

उनकी बातों का सार यही था कि सड़क पर जाकर उन किसानों के सामने मोती ने चिट्ठी रख दी। उनमें से एक पढ़ा हुआ था, उसने चिट्ठी को उठाकर पढ़ा, परंतु उसकी कुछ समझ में न आया, क्योंकि वह पत्र हिंदी में था। परंतु यह विचारकर कि देखें यह कहाँ ले जाता है, वे तीनों उसके साथ हो लिए और वहाँ तक आ पहुँचे।

गोविंद ने व्याकुल होकर उनसे मराठी में ही कहा—( क्योंकि वह बंबई में रहकर मराठी ख़ूब सखी गया था ) "बुआगों! आतां, तुमचे बोलणे पुरे करा! मोठी दुर्घटना झत्तली आहे। ह्या मनुष्याला कोणी चांगले बजावुँना ह्या नलायाँत फेंकुन दिले होंते।" तीनों किसानों ने आश्चर्य-पूर्वक रामेश्वर की ओर देखा और कहने लगे— "खरे आहे! पहा, बिचारयाचे सगले कपड़े तर्रभा ले आहे। माझ राम्या काला इथेंच बुड़ाला होता त्याचे सुद्धा, असेच हाल झाले होते। कारे पिल्या, तुला ठाउक आहेसना, पहा; आपण त्याला उच-लुव घरीं ने ला होता।" गोविंद ने नम्र होकर कहा—"ही वेल नुसत्या गप्पा ठोकीन बसल्या ची नाही। इथें जवल पास कुणांचे घरर बीर आहे का?" एक किसान ने कहा—"हो, आहे, थोड्याच अंतरा वर पिल्याचें घर आहे।" गोविंद ने कहा—"ते व्हाँ-ह्याला उचलुन तेथे घेउन चला।"

---

# पंचदश परिच्छेद

## घातकों का पीछा

"बस यही स्थान है! यहीं मुझे रामेश्वर की देह मिली थी।" इस भाँति बातें करते हुए रामनाथ और गोविंद मोती को साथ ले तलैया-किनारे खड़े थे।

रामेश्वर को पानी से निकाले अभी दो घंटे हुए थे। इसी बीच उसे उस किसान की झोंपड़ी में पहुँचाकर औषधोपचार भी आरंभ कर दिया था।

गोविंद ने मनुष्य भेजकर रामनाथ को सब घटना सूचित कर दी। उसे सुनकर ही रामनाथ तत्काल वहाँ आ पहुँचे थे।

रामनाथ ने कहा—"ये पाँव के चिह्न किसके दीखते हैं?"

गोविंद—"ये रामेश्वर को मारनेवालों के ही होना चाहिए। मैं उन्हें जानता हूँ। पहले मेरी सहायतार्थ तीन किसान आए थे। मैंने उनसे कह दिया था कि वे इन चिह्नों को न मिटने दें, इसीलिये उन्हें मैंने उस रास्ते ही न जाने दिया।"

रामनाथ ने गोविंद की पीठ ठोंककर कहा—"शाबाश! इन चिह्नों से अब उसका पता जल्द लग सकेगा। ये पाँव यहाँ से बाईं ओर गए हैं। वह देखो, जगह-जगह घास भी दबी हुई दीखती है। बस, इसी रास्ते से वे गए होंगे। मोती, अब देखता क्या है? चल उन्हें पकड़ें।"

मोती उसी क्षण अपना काम समझ गया और पाँव के चिह्नों को सूँघने लगा। नाक फुलाकर वह आगे बढ़ा। बाईं ओर को वह तलैया के किनारे-किनारे कोई सौ क़दम तक गया, और तिरछा पलटकर बाग़

के एक कोने की ओर घूमा । कुछ देर चलकर खुले मैदान में आ पहुँचा । यहाँ झाड़ी नाम को भी न थी । केवल घास बढ़ रही थी । वहाँ से एक पगडंडी रास्ता भी था, जो ठेठ बाग़ के फाटक तक चला गया था ।

फाटक के पास पहुँचकर मोती कुछ ठहर गया और इधर-उधर सूँघने लगा । फिर कुछ दूर चलकर वह सड़क पर आया । अब की बार वह बिलकुल न गड़बड़ाया, और एकदम दाहनी ओर को घूमा । पास ही मील का पत्थर गड़ा हुआ था । रामनाथ ने पढ़ा—"आँब ओढ़ा दोन मील ।" उसी समय उन्होंने अपना नक़्शा निकाला और स्थलादर्श देखकर कहा—"यह तो छोटा-सा गाँव है । यहाँ और क्या है ? एक-मात्र शराब बेचने की दूकान है, परंतु यहाँ से पूना-शहर निकट है ।"

चलो गोविंद, "आँब ओढ़ा" हो आवें । मोती अधीर हो गया है । सचमुच ही कुत्ता बड़ा अधीर दिखाई पड़ता था । वह बराबर आगे बढ़ता जा रहा था । पच्चीस ही मिनट में वे उस गाँव में जा पहुँचे ।

शराबवाले की दूकान रास्ते पर ही थी । मोती उसके दरवाज़े तक जा पहुँचा, और वहाँ ठहर गया । उसके पीछे-पीछे रामनाथ, गोविंद थे ही ।

दुकानवाला बड़ा योग्य मनुष्य था । रामनाथ को देखकर उसने आदर-पूर्वक कहा—"काय काम आहे राव साब ?" क्योंकि उसे इन लोगों को देख बड़ा आश्चर्य हुआ कि ये इतने सभ्य लोग यहाँ क्यों आए ! रामनाथ ने कहा—"भला इथुन काहीं ध्यायचे नाहींत ! फक्त एक गोष्ट विचार तो कीं, इथै कोणी बाहेर चा मनुष्य आला होता ?"

दुकानदार—"हो, थोडाच वेल झाला-इथें चारमाण सें आणी

होतीं। मला तरते विचित्र च दिसलीं। तेथ्या ले ले दिसत होते, त्यांचा शरीरा वर इतका धाम होता कि सांगता सोय नाहीं, जर्णूनें फार लांबी हून आ ले ले असावें।"

रामनाथ—"त्यांत कोणी चांगल्या पैकीं दिसत होला का?"

दुकानदार—"त्यांत तीनतर अगदींच भिकारड्या सारखे होते, पण एका चे मात्र कपडे चांगल्या माणस्य झारखे होते। तो मोठा लट्ठ सहा साड़े सहा फूंट उंच होता, आणि काल्या कश्मीस्याच। कोट आणि डोक्यावर चांगल माल होता!"

रामनाथ ने गोविंद के कान में कहा—"समझा कौन था? वही कृष्णप्रसाद का नौकर साँवलिया।"

गोविंद—"उसे क्यों न पहचानूँगा, वह तो मेरा पक्का मुलाक़ाती है। ( सिर खुजाकर ) उसकी लाठी का चिह्न अभी तक नहीं मिटा है। रामनाथ ने दुकानदार से पूछा—"ते इथें कितीवेल होते?"

दुकानवाला—"फारवेल नाहीं। प्रत्येकाने पायवयापर गटकाविली आणि कोटल्या ने खिशातून पुस्तक काढून-कांहीं पाहिले, आणि मग विचारले-इथून स्टेशन किती लांब आहे! ते चालेन झाके।"

रामनाथ—"बटे, पण इथून स्टेशन किती लांब आहे?"

दुकानदार—"हेंच तीन मैल असेल!"

रामनाथ ने कहा—"वरें, तरये तो भी आता राम-राम।"

इस संभाषण का खुलासा करने की आवश्यकता नहीं जान पड़ती, क्योंकि पाठकगण कम-से-कम समझ ही गए होंगे कि वे चारों धूर्त रामेश्वर को पीटकर इस दुकान पर मदिरा पीकर स्टेशन की ओर चले गए। उनमें एक साँवलिया और शेष तीन डकैत थे।

उसी समय रामनाथ स्टेशन पर पहुँचे, और स्टेशन-मास्टर से उन बदमाशों के संबंध में पूछ-ताँच की।

स्टेशन-मास्टर ने पुलिसवाले को बुलाकर पूछना आरंभ किया।

पुलिस के चौकीदार ने कहा—"आपके कहे मुताबिक़ चार आदमी एक्सप्रेस से बंबई गए। वे बदमाश बिलकुल ही गाड़ी छूटने के समय आए। उनमें से २-३ तो नशे में बिलकुल चूर थे। गाड़ी के डिब्बे बंद रखने पर भी उन्हें हमने बड़ी कठिनता से बिठला दिया, क्योंकि वे बड़ी नम्रता कर रहे थे।"

रामनाथ ने गोविंद से कहा—"तो अब तक वे बंबई के पास भी पहुँच गए होंगे। अब तार देकर बोरीबंदर ( विक्टोरिया टर्मिनस ) स्टेशन पर भी नहीं रुक सकते, और तार देने पर भी क्या होगा? क्योंकि हमारे पास ऐसा क्या प्रमाण है कि हम उन्हें रामेश्वर को पीटनेवाला सिद्ध कर सकेंगे! परंतु ठीक है; अब मैं समझ गया कि ये लोग कृष्णप्रसाद के ही भेजे हुए थे। आज नहीं तो कल देखेंगे। अस्तु, चलो हम अब विट्ठल-वाड़ी को चलें।"

गोविंद—"वहाँ चलकर क्या करना है?"

रामनाथ—"मुझे सरदार साहब से मिलना है और रामेश्वर पर बीती हुई घटना का हाल उन्हें सुनाना है, क्योंकि अब चुप बैठना ठीक नहीं है।"

---

# षोडश परिच्छेद

## सरदार साहब से मुलाक़ात

रामनाथ क्या आप ही का नाम है ? वाह वा ! आप यहाँ आकर मिले, यह बड़ी अच्छी बात हुई। आपके परिचय से मुझे बड़ा आनंद हुआ। किसी भी उद्योग में प्रवीणता प्राप्त कर लेनेवाले मनुष्य से मिलने में मुझे संतोष होता है।

रामनाथ ने कहा—"सरदार साहब ! आपने मेरे लिये ऐसे गौरवास्पद वाक्य कहे, इसके लिये मैं आपका आभारी हूँ। आपके-भूत दया-संबंधी कार्यों को सुनकर मुझे बड़ा आनंद हुआ। पुस्तक-प्रेम-संबंधी आपकी शुभ कीर्ति को मैं अच्छी तरह सुन चुका हूँ। परंतु जिसका सारा जीवन दोष और दोषियों की खोज में बीता है, उसके प्रति इतनी सहानुभूति दिखाने-संबंधी आपके विषय में मुझे स्वप्न में भी कल्पना न थी। यह आपकी उदारता है।"

सरदार०—"क्यों न होगी। 'समाज-सुधार' मेरा मुख्य और प्रिय विषय है। मेरी आंतरिक इच्छा है कि समाज के दुःख दूर हों। अपराधों की खोजकर दोषियों को दंड देना या दिलवाना भी समाज-सुधार का एक मुख्य और महत्त्व का विषय है। अपराधियों को दंड देने से ही समाज का कल्याण होगा, और दोषियों का दमन होने से समाज की दशा सुधरेगी।"

रामनाथ—"आपके विचार बड़े युक्ति-संगत जान पड़ते हैं। ऐसी दशा में आज आपके बाग़ की तलैया के किनारे जो अत्याचार हुआ है, उसकी खोज के काम में आपकी ओर से पूर्ण सहायता मिलने की आशा है।"

सरदार०—"अवश्य ! उस अत्याचार के संबंध में मैंने सुना है कि जिस पर अत्याचार हुआ, उस प्राणी के संबंध में मेरे मन में यद्यपि सहानुभूति नहीं है, तथापि घातकों को दंड अवश्य मिलना चाहिए।"

रामनाथ—"यह अत्याचार किस पर हुआ, इस पर आपने कुछ विचार किया है ?"

वृद्ध के कपाल पर पसीना आ गया और वे भौं चढ़ाकर कहने लगे—"रामनाथ ! वह तो अब कहीं मर रहा होगा। ऐसी दशा में मैं उसके विषय में कुछ अप्रिय बातें कहूँ, तो यह उचित न होगा। किंतु वही मनुष्य इस बाग़ में आकर गुप्त रीति से हमारी विमला से मिला करता था। विमला मेरी स्त्री की भांजी है, उसे मेरी भी भांजी ही समझिए। इसी कारण मुझे उसका बड़ा दुःख था, क्योंकि वे किस श्रेणी और किस वंश के हैं ? इसका भी तो कुछ विचार करना चाहिए था।"

रामनाथ—"अस्तु, पर वह था कौन, उसका नाम क्या है ?"

सरदार०—"उसके संबंध में मैंने न तो कभी चौकसी की है और न करने की ही इच्छा है।"

रामनाथ—"वह आप ही का है ! आपके ही भतीजे का लड़का रामेश्वर।"

सरदार०—"क्या हमारे मनोहरलाल का लड़का ! ठीक है, ( दाँत और होंठ पीसकर ) यह बात मैं नहीं जानता था। यदि जानता होता, तो मुझे और भी अधिक संताप होता ! वह भी अपने बाप की ही तरह उल्लू होगा।"

रामनाथ—"सरदार साहब ! ज़रा विचार तो कीजिए, क्या कह रहे हैं।"

सरदार०—"मैं जो कुछ कहता हूँ, वह सोच-समझकर ही कहता हूँ, उसके बाप से मुझे बड़ी घृणा है। उसका नाम तक मुझे नहीं

सुहाता। उसे मेरे पास से झगड़कर गए भी कई वर्ष हो चुके हैं। उसे स्वतंत्र रहने की इच्छा हुई और भिन्न-भिन्न व्यसन तथा प्रपंचों में फस-कर उसने अपने जीवन को भ्रष्ट कर डाला। उसी का पुत्र भला-मानस कैसे हो सकता है?"

रामनाथ—"पुत्र के संबंध में आप आज ही कैसे निर्णय कर सकते हैं। क्या आप विना आचरण देखे ऐसा कह सकते हैं?"

सरदार०—"उनकी परंपरा ही ऐसी है। मनोहरलाल का बाप भी ऐसा ही उत्पाती था। मनोहरलाल ने तो अफ़ीम, गाँजा, चंडू, जुआ इनमें से किसी को भी न छोड़ा। इसके सिवा एक मास्टरनी के साथ विवाह किया। समझे! मास्टरनी से!!"

रामनाथ—"तो फिर उसमें हानि ही क्या हुई?"

सरदार०—"हानि क्या! तुम तो बड़े भोले दीखते हो। सरकारी पाठशाला में पढ़नेवाली लड़कियों के रंग-ढंग ही निराले होते हैं। तब जो मास्टरनी या मिस्ट्रेस हों, उनका तो पूछना ही क्या है! समाचार-पत्र तो तुम पढ़ते ही होगे, परसों के अंक में क्या समाचार थे। परंतु अब हम यह दुःखकारक विषय ही छोड़ दें। मनोहरलाल को भूल जाने का मैंने प्रयत्न किया है। मैं तो केवल इन पुस्तकों के सहवास में ही अपना समय व्यतीत करता हूँ। मुझे मनोनुकूल, चतुर और प्रेमी तथा विद्वान् सहायक भी मिल गया है। इस योग से मेरा आयुष्य-क्रम सुखद बन गया है।"

रामनाथ—"आपके कारभारी भानुप्रसाद ही न? वाह वा!"

सरदार०—"भानुप्रसाद मेरे कारभारी ही नहीं, वरन् प्राण-प्रिय मित्र और सलाहदार हैं। उन पर मेरा प्रेम और विश्वास है। वे विद्वान् भी पूरे हैं। एकदेशीय होने पर भी हिंदी वाङ्मय के वे अच्छे ज्ञाता हैं। उत्तमोत्तम पुस्तकों के निराकरण में उनसे मुझे पूर्ण सहायता मिलती है। यह बहुमूल्य पुस्तक-संग्रह उन्हीं की

अभिरुचि और विद्वत्ता का मूल है। वे मुझे एकनिष्ठा से सहायता करते हैं। उनकी इस निष्ठा का व्यर्थ जाना भी असंभव है। मैंने अपने संपत्ति-पत्र में उनके नाम पर पचीस सहस्र रुपए देना लिख रक्खा है। इसके सिवा अभी की ही कुछ-कुछ बातों से मैंने उन्हें अपनी संपत्ति का अधिकांश भाग दे डालने की योजना की है। पर अब हमारी घरू बातें तुम्हें सुनकर क्या करना है? भानुप्रसाद ने मुझ पर इतने उपकार किए हैं कि प्रत्येक मनुष्य के सम्मुख उनके विषय में दो-चार भली बातें कहे बिना मुझसे नहीं रहा जाता। घर के अन्य सब लोग मेरी मर्ज़ी के विरुद्ध हो गए, किंतु वे एक ही अभी तक मेरी आज्ञानुसार आचरण कर मेरी आत्मा को सुख दे रहे हैं।"

वृद्धा की बातों से रामनाथ ने उनका रुख़ पहचान लिया। उसी समय उन्होंने अपनी बातों का विषय बदल दिया। बुड्ढे का प्रिय विषय पुस्तक है, और पुस्तक के विषय में बातें करते रहने से यह कभी न उकतावेगा। ऐसा विचार कर रामनाथ ने वही विषय छेड़ा। वृद्ध बड़ा ही प्रसन्न हुआ। उसने अपने अमूल्य संग्रह में से कुछ ग्रंथ भी निकालकर रामनाथ को दिखलाए। वे केवल ग्रंथों का संग्रह ही नहीं कर रखते, वरन् पढ़ते भी थे। अँगरेज़ी, हिंदी तथा महाराष्ट्र-प्रांत में रहने से मराठी वाङ्मय के अधिकांश सभी सर्वमान्य ग्रंथों को वह पढ़ चुके थे। भिन्न-भिन्न पुस्तकों के गुण-दोष-संबंधी अपने विचार रामनाथ को सुनाकर वृद्ध ने उसे तल्लीन बना दिया।

सहस्ररजनी-चरित्र और क़िस्सा साढ़े तीन यार-जैसी पुस्तकों के प्रति सरदार साहब को बड़ी घृणा थी। वे समझते थे कि ऐसी पुस्तकें समाज की अभिरुचि को बिगाड़ देती हैं। इसी प्रकार कवियों की भी अतिशयोक्तियाँ उन्हें अधिकतर न रुचती थीं। उनका सर्व-प्रिय विषय एक-मात्र इतिहास था। ऐतिहासिक नाटक और उपन्यास ही उन्हें बहुत पसंद थे। इसी भाँति किसी विशिष्ट उद्देश्य

को सामने रखकर लिखा हुआ सामाजिक विचारों में क्रांति उत्पन्न कर देनेवाला उपन्यास भी उन्हें पसंद हो जाता था। इस प्रकार के उपन्यासों की बातें करते हुए उन्होंने रामनाथ से कहा—

"समाज मे क्रांति उत्पन्न कर देने का काम बोल-चाल की भाषा में लिखे हुए किसी उपन्यास के द्वारा जितनी सरलता से शीघ्रता-पूर्वक बन जाता है, उतना धर्माचार्यों के उपदेश और बड़े-बड़े प्रभावशाली वक्ताओं के भाषण अथवा समाचार-पत्रों के निर्भीक, ज़ोरदार और मार्मिक अग्र लेखों से भी नहीं बन सकता। इस बात में यद्यपि लोगों को मतभेद हो, परंतु मुझे इस बात पर दृढ़ विश्वास हो गया है।"

'टाम काका की कुटिया'-नामक उपन्यास रामनाथ को दिखाकर वृद्ध ने गंभीरता से कहा—"यह एक साधारण प्रति का उपन्यास है।" भाषा-सौंदर्य की दृष्टि से इसमें विशेषता कुछ भी नहीं है, तथापि इस छोटी-सी पुस्तक ने कितना भारी काम कर दिखाया! कितनी भारी क्रांति उत्पन्न कर दी। यह न तो कोई सरकारी ब्ल्यू बुक (नीली पुस्तक) है, न किसी आचार्य की अनुशासन पत्रिका ही। परंतु अमेरिका की क्रीतदास (गुलामी) प्रथा को रोकने का कार्य जैसा इस छोटी-सी पुस्तक ने किया है, वह हज़ारों सरकारी ब्ल्यू बुकों अथवा अनुशासन पत्रिकाओं से भी नहीं बन सकता। अमेरिकन निग्रो जाति की दासत्व प्रथा को समूल उठा देने के लिये मिसेस स्टो ने जिस ढंग से प्रयत्न किया, उसी प्रकार से वर्तमान दासत्व को दूर करने के लिये यदि कोई लेखक प्रयत्न करे, तो कितने आनंद की बात हो, और समाज का कितना उपकार हो?"

रामनाथ ने कहा—"क्या आधुनिक दासत्व?"

सरदार साहब ने पूर्ववत् अवसान करके कहा—"हाँ, आधुनिक दासत्व! समाज को मदिरा, अफ़ीम, चरस, चंडू, भंग, गाँजा आदि

भिन्न-भिन्न प्रकार के व्यसनों का आदी बन जाना, उन व्यसनों की गुलामी नहीं, तो और क्या है ? यदि कोई चतुर ग्रंथकार इस अत्यंत महत्त्व के विषय पर पुस्तक लिखकर इस दासत्व से मुक्त होने का मार्ग दिखावे, तो समाज पर उसका कितना उपकार होगा ? यही देखो, इस ग्रंथ की जोड़ीदार पुस्तक हिंदी-भाषा में कोई तैयार कर दे, तो मैं उस पर सब संपत्ति निछावर कर दूँ ।"

रामनाथ का मुख प्रसन्न हो गया, और अपने मुख्य विषय पर बातें करने का यह अच्छा समय है, ऐसा मौक़ा फिर न आवेगा । बुड्ढे को अच्छा रंग चढ़ा है । इन सब बातों को देखकर रामनाथ ने कहा—"सरदार साहब ! जैसा आप चाहते हैं, वैसा एक ग्रंथ तैयार है !"

वृद्ध ने बड़ी उत्सुकता से पूछा—"तुम कह क्या रहे हो ? यदि ऐसा था, तो फिर इतने दिन तक वह पुस्तक मुझे क्यों दिखाई न दी ? अच्छा, तो उस पुस्तक का नाम क्या है ?"

रामनाथ—"वह अभी तक छपकर प्रकाशित न हो सकी है, न अभी वह पूरी लिखी ही जा सकी है। थोड़ा-सा भाग लिखना रहा है ।"

सरदार०—"परंतु वह लिखी किसने है ? ग्रंथकार का नाम तो बतलाओ ।"

रामनाथ—"ग्रंथकार भी अभी अप्रसिद्ध ही है, किंतु वह विद्वान् है ।"

सरदार०—"क्या आपको विश्वास है कि वह पूरा बुद्धिमान् है ?"

रामनाथ—"क़िस्मत से वह पुस्तक देखने को मिल गई थी, मैंने उसी समय उसे आधी पढ़ी थी, उससे तो मैं कह सकता हूँ कि ग्रंथकार लोकोत्तर बुद्धिवाला और समाजोद्धारक है ।"

सरदार०—"आपकी बातों से मुझे उसे देखने की उत्कट इच्छा हुई है । क्या उसकी हस्त-लिखित प्रति मुझे देखने को मिल सकती है ? अथवा आप ही कृपा कर मुझे एक प्रति भेज सकें, तो बड़ा उपकार होगा ।"

रामनाथ—"इसमें उपकार के लिये कौन-सी बात है? दो-तीन दिन में ही मैं आपके पास उसकी एक प्रति भेजने की व्यवस्था करता हूँ।"

रामनाथ प्रसन्न होकर लौटे और मन में विचारने लगे कि मनोहर-लाल की पुस्तक सरदार साहब को दिखाने का मौक़ा आज अच्छा मिला है। आशा है, अब सब कुछ ठीक हो जायगा। वृद्धा के अंतःकरण को अपना बनाने के लिये उनको ख़ुश करना चाहिए। वह बात इस पुस्तक से बन सकेगी? मनोहरलाल की नैसर्गिक बुद्धि में ही परिवर्तन होने से बुड्ढा नाराज़ हो गया है। परंतु यह पुस्तक मनोहरलाल की परिपक्क बुद्धिमत्ता का फल है। संभव है कि इसे पढ़कर वृद्ध प्रसन्न हो जाय, और उस मत को बदलकर वह फिर मनोहरलाल पर प्रेम करने लगे। वास्तव में पुस्तक अपूर्व ही थी।

पुस्तक अभी पूरी न लिखी जा सकी थी, उपसंहार शेष था। इसके सिवा रामनाथ की इच्छा उसे पुनः संशोधन करने की भी थी। किंतु उन्होंने विचार किया कि अब विलंब करने से काम में विघ्न होगा। सरदार साहब पके पान हैं। कब गिर पड़ेंगे, कोई नियम नहीं। वे अस्सी मे ऊपर पहुँच गए हैं, और भानुप्रसाद को ही अधिकांश संपत्ति देने का विचार वे मुझसे प्रकट कर चुके हैं। उन्होंने यह बात लिखकर भी रख दी है। ऐसे धूर्त और हरामख़ोर को यह सब संपत्ति मिलना बड़ा अन्याय होगा, इसीलिये बुड्ढे को वश में करने का काम शीघ्रता मे करना चाहिए। पुस्तक को शीघ्रता से पूरी करके सारी पुस्तक की एक प्रति इनके पास शीघ्रता से पहुँचानी चाहिए। ऐसा करने से ही उन दुष्टों को यथोचित दंड भी मिल सकेगा। इसके सिवा अन्य मार्ग ही नहीं है। यही विचार अब ठीक होगा।

---

# सप्तदश परिच्छेद

## अब काम बन गया

रामनाथ और सरदार साहब में जो कुछ बातें हुईं, उसका प्रत्येक शब्द भानुप्रसाद ने छिपकर सुना। यदि उनका वश चलता, तो वे यह भेंट ही न होने देते, क्योंकि वे रामनाथ को अच्छी तरह जानते थे। परंतु रामनाथ भी बड़े उस्ताद थे। उन्होंने अपनी चिट्ठी भानुप्रसाद के हाथ में न पड़ने देकर ख़ास सरदार साहब तक पहुँचाने का प्रबंध कर लिया था। तिस पर भी उन्हें संदेह था कि कुछ कारण निकालकर कदाचित् भानुप्रसाद सरदार साहब से भेंट न होने देगा। इसीलिये उन्होंने अपने आने का कृत्रिम हेतु यह प्रकट किया कि मैं यों ही घूमता हुआ इधर चला आया, तो यहाँ के बाग़ में अत्याचार होने की ख़बर लगी। उसी की खोज में सरदार साहब से सहायता प्राप्त करने की इच्छा से यहाँ आया हूँ।

भानुप्रसाद को संशय होने के लिये इतना ही बस था। वे वाचनालय से सटी हुई कोठरी में छिपकर सब बातें सुनते रहे। अपूर्ण पुस्तक के संबंध में रामनाथ की बात सुनकर तो भानुप्रसाद चकरा ही गए, और सोचने लगे—"कदाचित् ये मनोहरलाल की पुस्तक के संबंध में तो कुछ नहीं कह रहे हैं! कुछ भी हो, परंतु रामनाथ की भेजी हुई पुस्तक सरदार साहब तक न पहुँच सके। ऐसी व्यवस्था करना चाहिए, क्योंकि यदि ऐसा न होगा और वह पुस्तक सचमुच ही अपूर्व निकली, तो मेरी आशाओं पर पानी ही फिर जायगा। और, सरदार साहब अपनी अधिकांश संपत्ति उसे दे देने में देर तक न करेंगे।"

सारी संपत्ति मुझे ही मिल सके, इसके लिये भानुप्रसाद ने भरसक

प्रयत्न करना आरंभ किया। विमला का प्रेम संपादन करने के लिये भी उनका प्रयत्न हो रहा था, किंतु उसमें अब तक सफलता नहीं मिल सकी। विमला के उनके प्रति घृणा प्रकट करने पर भी भानुप्रसाद निराश नहीं हो गए थे। उन्हें तो विमला भी चाहिए थी और संपत्ति भी। परंतु ज्यों ही एक बार विमला मिली, फिर संपत्ति तो अपनी बनी ही हुई है। इसीलिये उन्होंने सबसे प्रथम विमला को प्रसन्न करने का प्रयत्न किया, और उसकी ओर से घृणा प्रदर्शित करने पर उन्होंने सरदार साहब को प्रसन्न करने का उद्योग किया। उन्होंने मन में विचारा कि वृद्ध ने एक बार प्रसन्न होकर ज्यों ही मेरे नाम सारी संपत्ति लिखी कि फिर विमला आप ही वश में आ जायगी; क्योंकि उसे फिर भिखारी रामेश्वर की अपेक्षा सरदार साहब की अपार संपत्ति के अधिकारी भानुप्रसाद ही प्रेम के योग्य जान पड़ेंगे। इस बात पर उनको दृढ़ विश्वास हो गया, किंतु विमला के अंतः-करण की सच्ची परीक्षा उन्हें न हो सकी थी। अन्यथा ऐसा समीकरण रचकर वे अपने को हो न फसा लेते। अस्तु।

इस घटना के चार-पाँच दिन बाद एक दिन सबेरे भानुप्रसाद वाचनालय में बैठे हुए समाचार-पत्र टटोल रहे थे। सरदार साहब अभी वहाँ न आ पाए थे। आई हुई डाक में ब्राउन पेपर में लपेटा हुआ एक बुक-पोस्ट था। पहले तो उसे किसी कंपनी का सूचीपत्र समझकर भानुप्रसाद ने अलग रद्दी की टोकरी में डाल दिया, किंतु फिर कुछ विचार आ जाने से उसे खोलकर देखा, मुख-पृष्ठ का नाम पढ़ते ही वे अपने को सँभाल भी न सके, विषयानुक्रमणिका पढ़ते ही उनका सर भन्ना गया। पुस्तक पर नाम था—'जब सूर्योदय होगा' लेखक 'सुदर्शन'।

जल्दी-जल्दी में उन्होंने उसके दो-चार पृष्ठ पढ़ डाले। उनका चित्त सहसा खिन्न हो गया, पुस्तक के साथ ही रामनाथ का पत्र भी था।

उसमें जिस पुस्तक के संबंध में मैंने आपसे बातचीत की थी वह यही है। इस आशय का कुछ लेख था। भानुप्रसाद का हृदय धड़कने लगा और वे वाचनालय में किंकर्तव्यमूढ़ होकर इधर-उधर टहलने लगे।

कुछ भी हो, तथापि मनोहरलाल सरदार साहब के ख़ास भतीजे हैं। यदि यह पुस्तक उनके हाथ पहुँची और उन्होंने इसे पढ़ा, तो तत्काल मेरी आशाओं पर पानी फिर जायगा, और मेरा मनोराज्य नष्ट हो जायगा।

इस प्रकार अनेक तर्क-वितर्क करते हुए भानुप्रसाद विचार-मग्न हो गए, और थोड़ी ही देर में कुछ निश्चय-सा कर वे स्वगत कहने लगे—"उँह, इस पुस्तक को सरदार साहब के हाथ न पहुँचने देने का काम कोई कठिन नहीं।" सर्प की फुस्कार के समान ये शब्द उनके मुँह से निकल पड़े। किसी घोर प्रतिज्ञा के करते समय जिस आवेश में मनुष्य बोला करता है, उसी प्रकार का भाव भानुप्रसाद के शब्दों में भी था।

इस पुस्तक को उनके हाथों में न पड़ने देने के लिये अभी 'अग्नये स्वाहा' कर देना चाहिए। यही सबसे सीधा और शीघ्र साध्यउपाय है।

सर्दी के दिन थे। सरदार साहब के लिये कोयले जलाकर सिगड़ी तैयार रक्खी हुई थी। भानुप्रसाद उसी क्षण सिगड़ी के पास गए, और एक बार उस पुस्तक की ओर देखकर तत्काल उसे भक्ति-पुरस्सर अग्नि नारायण को समर्पण कर दिया। चिमटा उठाकर उन्होंने अंगारों को ऊँचा-नीचा किया। एक सेकंड में ही वह टाइप की हुई पुस्तक जल उठी। उसके एक ओर लाल नेत्र किए हुए भानुप्रसाद अपने इस दुष्कृत्य को खड़े-खड़े देख रहे थे। पाँच ही मिनट में पुस्तक भस्मीभूत हो गई। तब भानुप्रसाद ने बड़े उत्साह से कहा—"अब काम बन गया!"

मनोहरलाल की अलौकिक बुद्धिमत्ता का अवसान हो गया ! अब उसके लिये कोई भय भी नहीं रहा। परंतु अब शीघ्रता करके अपने पास की पुस्तक को पूर्ण कर देना चाहिए, और अपनी अलौकिक, नहीं-नहीं ( रामनाथ के शब्दों में ) लोकोत्तर बुद्धिमत्ता की फल-स्वरूप पुस्तक पर सरदार साहब का ध्यान खींचना चाहिए। बस, इतने से ही काम बन जायगा। फिर तो मनोहरलाल के सारे परिश्रम का फल मुझे ही मिल जायगा। इस सारी संपत्ति पर अपना ही अधिकार हो जायगा। अरे ! पर पहले इन जले हुए काग़ज़ों की व्यवस्था कर देना चाहिए, क्योंकि सरदार साहब के आने का समय हो गया है। अब शीघ्रता करना चाहिए।

भानुप्रसाद ने सिगड़ी में रक्खे हुए अंगारों को चिमटे से हिला-हिलाकर फिर प्रज्वलित किया। जब उन जले हुए काग़ज़ों की राख हो गई, तब कहीं उनके जी में जी आया। इसके बाद उन्होंने जेब से रूमाल निकालकर मुँह का पसीना पोंछा। कपड़ों पर पड़ी हुई राख को उड़ाकर साफ़ किया। इतने ही में बाहर से किसी के आने का शब्द सुनाई दिया। सरदार साहब ही वाचनालय में आ रहे थे। भानुप्रसाद शीघ्रता से उठकर अपने नित्यप्रति के काम करने को टेबुल के सामने जाकर बैठ गए।

मिनट-भर में ही सरदार साहब वाचनालय के द्वार तक आ पहुँचे। उस समय उनके कृपापात्र कारभारी साहब सबेरे की आई हुई डाक खोलने में निमग्न हो रहे थे। उनका मुख नित्य नियमानुसार प्रसन्न दिखाई देता था।

सरदार साहब अपने आसन पर आ विराजे, और एक पुस्तक देखने लगे। भानुप्रसाद अपना काम कर रहे थे। थोड़ी ही देर में किसी बात का स्मरण हो आने से सरदार साहब ने पूछा—"भानु-प्रसाद, उस पुस्तक के संबंध में मुझे बड़ी चटपटी-सी लग

रही है, मैंने तुमसे कहा भी था । क्या वह रामनाथ की ओर से आई है ?"

भानु०—"अभी इस सवेरे की डाक में तो नहीं है !"

सरदार०—"क्या कारण है, जो रामनाथ ने अब तक पुस्तक न भेजी ?" भानुप्रसाद ! मुझे तो अब उस पुस्तक के सिवा और कुछ भी नहीं सूझता । रामनाथ ने उसकी ऐसी कुछ प्रशंसा की थी कि मेरा यह जी होता है कि मैं उसे कब देखूँ और पढ़ूँ । ख़ैर, शाम की डाक में आवेगी । यदि शाम को भी नहीं, तो कल सवेरे तो वह अवश्य ही आवेगी । भानुप्रसाद, पुस्तक आते ही तुम प्रथम उसे मेरे पास भेज देना ।"

भानु०—"अच्छी बात है । आते ही आपके पास ले आऊँगा ।"

भानुप्रसाद ने एक ओर मुँह फिराकर हँस दिया और मन-ही-मन कहा—"कल तो क्या ! पर अब वह इस जन्म में भी आपको न मिलेगी । और जब मिलेगी, तो वह रामनाथ द्वारा प्रशंसित लेखक के नाम से नहीं, वरन् भानुप्रसाद वर्मा के नाम से आपके सामने आवेगी । अप्रतिम लेखक के नाते संसार में मैं ही कीर्तिमान् बनूँगा और उसका आर्थिक लाभ मैं ही उठाऊँगा ।"

---

# अष्टादश परिच्छेद

## भानुप्रसाद की नीचतामय कल्पना

'जब सूर्योदय होगा'-नामक पुस्तक की टाइप की हुई प्रति को भेजे हुए आज आठ दिन हो गए थे, तथापि सरदार साहब की ओर से उसके संबंध में कुछ भी सूचना न मिलने से रामनाथ आज फिर उनको मिलने गए थे। रामनाथ को देखते ही सरदार साहब ने प्रसन्न होकर कहा—"रामनाथ! तुम्हें आए देखकर मुझे बड़ा आनंद हुआ। उस पुस्तक की मैं अभी तक प्रतीक्षा कर रहा हूँ। अब भी क्या तुम साथ में लाए हो?"

रामनाथ—"क्या? साथ में लाया! मैंने तो उसे आज से आठ दिन पूर्व ही आपके पास बुकपोस्ट द्वारा भेज दिया था।"

सरदार०—"एं! क्या आपने भेज दी थी? तब क्या हुआ! मुझे तो नहीं मिली?"

रामनाथ—"आपको न मिले, यह असंभव बात है। पता आदि सब मैंने अपने ही हाथ से लिखा था और ख़ुद जाकर डाक में छोड़ा, वह आपको मिलना ही चाहिए। (किसी भारी हानि के हो जाने-जैसा मुँह बनाकर) पुस्तक आपके ही घर में होनी चाहिए। भूल से अथवा अन्य किसी गड़बड़ के कारण बुकपोस्ट इधर-उधर गिर पड़ा होगा।

रामनाथ का चिंतातुर मुख देख वृद्ध को बड़ा खेद हुआ।

सरदार०—"हमें वह क्यों नहीं मिली, इसी पर मुझे बड़ा आश्चर्य होता है। मुझे तो उसे देखने की इतनी आतुरता हो रही है कि मैं नित्यप्रति उसकी चौकसी करता रहता हूँ। क्यों भानु-प्रसाद! तुम भी देखते हो न?"

भानु०—"हाँ ! आप दिन-भर में ३-४ बार उसकी तलाश करते हैं !"

सरदार०—"रामनाथ ! तुम भूल करते हो, यदि वह पुस्तक यहाँ आती, तो अवश्य मुझे मिलती । नित्य की डाक तो मैं ही खोलता हूँ ।"

रामनाथ—"ठीक है ! देखता हूँ कि वह कहीं गुम तो नहीं हो गई। अच्छा ! सरदार, साहब मैं घर जाकर चौकसी करता हूँ ।"

तत्काल रामनाथ वहाँ से चल दिए। भानुप्रसाद बड़ी दूर तक उन्हें पहुँचाने गए । उनके मुख पर स्मित हास्य था, यह बात रामनाथ समझ गए । भानुप्रसाद सहानुभूति दिखाते हुए बोले—

"रामनाथ ! यह तो बड़ी बुरी बात हुई। अवश्य चिंता रखकर खोज करो ।"

रामनाथ—"अजी ! महत्त्व की, यह तो सर्वनाश की ही बात हुई है। यदि वह पुस्तक कहीं खो गई, तो...?"

भानु०—"तो क्या ? तुम्हारे उस अप्रसिद्ध लेखक की मेहनत व्यर्थ ही चली जायगी । बेचारे की कितनी हानि होगी ।"

ये शब्द उनके मुख से इस प्रकार निकले, मानो वे रामनाथ की हँसी कर रहे हैं । रामनाथ इस हँसी की प्रतीक्षा कर ही रहे थे ; क्योंकि मैं जीत गया, इस प्रकार भानुप्रसाद को जो आशा थी, उसके लिये यह हँसी मानो अप्रत्यक्ष प्रमाण थी। रामनाथ ने एकदम पीछे फिरकर भानुप्रसाद के मुँह की ओर देखा। और फिर कहा—"मुझे दृढ़ विश्वास है कि ग्रंथकार का परिश्रम व्यर्थ न जायगा। परंतु टाइप की हुई एक प्रति गुम हो गई है, अतः दूसरी भेजना चाहिए, क्यों, यही ठीक है न ?"

भानुप्रसाद का मुँह एकदम उतर गया । वे काँपकर पूछने लगे—'दूसरी प्रति ! क्या तुम्हारे पास उसकी प्रति और भी है ?"

रामनाथ—"हाँ-हाँ, है । मैं अभी घर जाकर उसे भेजे देता हूँ।"

रामनाथ आगे को बढ़ चले। परंतु भानुप्रसाद तटस्थ रह गए, और विचारने लगे—"रामनाथ के पास दूसरी प्रति है ही, और ये अभी घर जाकर उसे भेजनेवाले हैं। कृष्णप्रसाद ने इतना परिश्रम किया और वह हस्त-लिखित प्रति प्राप्त की, उसकी भी मेहनत व्यर्थ गई। और, आई हुई प्रति को जला देने में मैंने जो चालाकी की थी वह भी निरुपयोगी ही सिद्ध हुई। परंतु उस आनेवाली प्रति की भी वही दशा कर दूँ, तो! पर उससे क्या होगा? रामनाथ के पास फिर एक आध प्रति और होगी ही। वे फिर ले आवेंगे। इससे कोई लाभ नहीं, किंतु पुस्तक की मूल प्रति तो रामनाथ के नहीं, बरन् मेरे पास है। कदाचित् साँवलिया के पुस्तक लेने को पहुँचने से पूर्व ही रामनाथ ने उसकी एक-दो प्रतियाँ कर ली हों, इसी कारण मूल प्रति के खो जाने की उन्हें कुछ भी चिंता नहीं है, अन्यथा ये अब तक न-जाने क्या आकाश-पाताल छान डालते। अस्तु, अब तक तो मैं इस काम में असफल हुआ ही हूँ, किंतु जिस काम को एक बार हाथ में लिया है उसे पूरा करके ही छोड़ूँगा, परिणाम भले ही कैसा क्यों न हो। ज्यों ही एक बार पुस्तक पूरी हुई और मेरे नाम से प्रकाशित हो गई कि फिर तो द्रव्य और कीर्ति का टोटा न रहेगा! किंतु यह होगा कैसे? रामनाथ की ओर से कल दूसरी प्रति आ जावेगी, और ज्यों ही एक बार वह सरदार साहब को दृष्टिगोचर हुई कि बस, मेरे किए-कराए काम पर पानी ही फिर जायगा! सरदार साहब उस पुस्तक को न देख सकें, इसके लिये एक उपाय है, वह यही कि उनकी पढ़ने की शक्ति नष्ट कर दी जाय। बस, यही विचार ठीक है।"

दूसरे दिन जब रामनाथ विट्ठल-वाड़ी गए, तो वहाँ उन्हें एक दुर्घट समाचार कर्णगोचर हुआ!

कल सायंकाल के समय सरदार साहब नित्य नियमानुसार अकेले

ही बाग़ में टहल रहे थे कि इसी बीच डाकुओं ने उन्हें घेरकर बेतरह मार-पीट की और उनकी सोने की घड़ी तथा जेब में रक्खे हुए नोट लेकर वे भाग गए। बेचारे बुड्ढे की जान पर ही आ बनी थी, किंतु ठीक समय पर भानुप्रसाद वहाँ पहुँच गए, और बड़ी वीरता से चारों को भगाया।

स्थानीय पुलीस की रिपोर्ट के अनुसार भानुप्रसाद ने ही उन्हें बचाया, किंतु वे कुछ देर से पहुँचे। डाकुओं ने इसके पूर्व ही उन्हें ख़ूब बजा लिया था। बेचारे वृद्ध के मुख पर कुछ रासायनिक पदार्थ भी फेका गया था, इस कारण उनका मुख सूज गया था। यही नहीं, वरन् आँखों से दीखना बंद होकर वे एक प्रकार से अंधे ही बन गए थे।

---

# एकोनविंशति परिच्छेद

## युक्ति पर युक्ति

विट्ठल-वाड़ी में आज बड़ी गड़बड़ मच रही थी। पुलीसवाले घर के नौकर-चाकर लोगों से पूछ-ताछ कर रहे थे। कोई बाग़ में जाकर घटनास्थल देख अनुमान लगा रहा था। पुलीस इंस्पेक्टर ने डाकुओं का पता लगाने को एक पार्टी पहले से ही भेज दी थी।

बंबई तार भेजकर डॉक्टर प्रभाकर बुलवाए गए। और भी दो-चार बड़े-बड़े डॉक्टर वहाँ आ उपस्थित हुए। भानुप्रसाद ने अपने मित्र डॉ० गोपालप्रसाद को भी बुलवा लिया था। सबने यही सम्मति दी कि नेत्रों की शस्त्र-चिकित्सा की जाय। यद्यपि शस्त्र-प्रयोग बड़ा नाज़ुक काम है, तथापि चिकित्सा होने के पश्चात् तीन महीने तक रोगी को अँधेरी कोठरी में सुला रखना होगा।

डॉ० प्रभाकर ने रामनाथ से कहा—"इसके सिवा और कुछ इलाज नहीं होगा।" रामनाथ डॉक्टर साहब के बाल-मित्र थे। दोनों में बड़ा प्रेम था।

डॉ० प्रभाकर—"यह घटना कुछ चमत्कारिक जान पड़ती है! डाकू बड़े होशियार जान पड़ते हैं। परंतु रामनाथ! क्या चोरी या लूट के ही उद्देश्य से ऐसा हो सकता है?"

रामनाथ—"पुलीस के कहने से तो यही जान पड़ता है।"

डॉ० प्रभाकर"—पुलीस चाहे सो कहे, परंतु तुम्हारी इस विषय में क्या कल्पना है? पुलीस का कहना तुम्हें सच नहीं जान पड़ता, यह बात तुम्हारे मुँह से जान पड़ती है। बतलाओ, तुम इसके विषय में क्या कह सकते हो?"

रामनाथ—"बात कुछ ऐसी ही है ; परंतु डॉक्टर साहब ! मेरा तर्क कुछ और ही है। मैं अभी वह आपके सामने प्रकट नहीं कर सकता, आप नाराज़ न हूजिए !"

डॉक्टर—"अजी, इसमें नाराज़ी की बात ही क्या है ! परंतु मैं तुम्हारी कल्पना सुनने को उत्सुक हूँ। बीच-बीच में मैं यहाँ आता ही रहूँगा, और तुम यहाँ हो ही, तो फिर क्या है ? किसी दिन बैठकर अपनी सब बातें होंगी।"

रामनाथ—"यह तो सब ठीक है, परंतु शस्त्र-प्रयोग तो आप ही करेंगे न ?"

डॉक्टर—"नहीं, यह काम मि० गोखले को सौंपा गया है।"

रामनाथ—"मैंने तो इनका नाम भी नहीं सुना। ऐसे नौसिखिए को इतनी जवाबदेही का काम आप क्योंकर सौंप रहे हैं, सो मैं नहीं समझ सका। फिर आपने यह एम्० डी० और एल्० आर० सी० पी० की डिग्रियाँ क्यों धारण की हैं ?"

डॉक्टर—"वाह; रामनाथ ! ख़ूब छकाया। मुझे तुमने केवल नेक्टाई कॉलर की ठसक में रहनेवाली कड़कड़ाट एल्० आर० सी० पी० ही समझ रक्खा है। अजी, इन पदवियों में क्या धरा है ? मिस्टर गोखले बड़े अनुभवी डॉक्टर हैं। शस्त्र-क्रिया में इनके समान कुशल डॉक्टर शायद ही कोई होगा। मैंने तो एक भी डॉक्टर इतना चतुर नहीं देखा है। सब जगह होशियारी और कार्य का उत्साह तथा विश्वास की ही पूछ होती है। कोरी डिग्रियों से कुछ काम नहीं चल सकता। डॉ० गोखले ही यह प्रयोग करेंगे, और उस समय मैं वहाँ उपस्थित रहूँगा, मैं तो अब बुड्ढा हो चला, अब इन तरुण लोगों को आगे बढ़ना चाहिए।"

रामनाथ—"डॉक्टर साहब, यह तो सब ठीक है, परंतु आप क्या मेरा एक काम करेंगे ?"

डॉक्टर—"अवश्य ! कहो, तुम्हारा क्या काम है रामनाथ ! क्या आँखें जँचवानी हैं ?"

रामनाथ—"आपको तो आँखों के सिवा और कुछ सूझता ही नहीं ।"

डॉक्टर—"इसमें क्या संदेह है ! किसी से भी पूछ देखो, बिना आँख के किसी को सूझ भी सकता है ? अस्तु, कहो भाई, तुम्हारा क्या काम है ?"

रामनाथ—"यहाँ पर ऐसा हुक्म दे दो कि कोई भी सरदार साहब के पास न जाय, और उन्हें चुपचाप पड़े रहने दे । आपका यह हुक्म भी यहाँ मान लेंगे !"

डॉक्टर—"उन्हें स्वस्थ पड़े रहने को तो कह ही दिया गया है, और वह भी अँधेरी कोठरी में । अब और क्या चाहते हो ?"

रामनाथ—"यही कि नौकर-चाकर कोई भी उनके पास न जाने पावे !"

डॉक्टर—"परंतु तुम्हारे ऐसा करने का कारण क्या है ?"

रामनाथ—"डॉक्टर साहब ! उस भानुप्रसाद को अलग रखने की मेरी इच्छा है !"

डॉक्टर—"कौन भानुप्रसाद ? वही जो पतला और लंबा-सा आदमी है ?"

रामनाथ—"हाँ ! वही इनका कारभारी है ।"

डॉक्टर—"और उसे तुम्हारे मन से भी दूर रखना है न ? ठीक है, परंतु तुम अपनी जिस बात को छिपा रखना चाहते हो, उसी का यह एक अंश जान पड़ता है । क्यों ? ख़ैर, मैं तुम्हारे काम में विघ्न डालना नहीं चाहता । तुम जो कुछ कर रहे हो, उसमें अवश्य कोई गूढ़ रहस्य होगा । मैं अभी तुम्हारे कहे अनुसार प्रबंध किए देता हूँ, फिर आनंद से अपना काम बनाना ।"

रामनाथ के इच्छानुसार डॉक्टर साहब ने ऐसा सख़्त हुक्म दिया

कि डॉक्टर और सुश्रूषा करनेवाली परिचारिका के सिवा दूसरा कोई भी व्यक्ति सरदार साहब के पास न जाने पावे; किंतु रामनाथ के लिये इस बात की छूट थी। शस्त्र-प्रयोग करने के कुछ ही दिन बाद डॉक्टर ने रामनाथ के लिये सरदार साहब के पास आने-जाने की आज्ञा दे दी थी, परंतु अभी उसमें कुछ देर थी।

भानुप्रसाद ने डॉक्टर साहब का हुक्म मान लिया। उनका स्वभाव जन्म-संशयी था ही, परंतु डॉक्टर के कहने में उन्होंने संशय-जन्य कोई बात न देखी। उन्हें जान पड़ा कि रोगी को आराम मिल सके, इसीलिये यह हुक्म दिया है।

उन्हें इस बात की स्वप्न में भी कल्पना न हुई थी कि रामनाथ और डॉक्टर के बीच बाल्यावस्था से ही प्रेम-भाव है, और मुझे अलग रखने के लिये यह योजना की है।

भानुप्रसाद को कुछ दिन के अवकाश की आवश्यकता ही थी; क्योंकि उन्हें वह अपूर्ण पुस्तक पूरी करनी थी। उन्होंने विचार किया कि यदि सरदार साहब के स्वस्थ होने तक पुस्तक पूरी हो जाय, तो अच्छी बात है। अभी इन्हें आराम होने में भी दो-तीन महीने लगेंगे, और तब तक इनसे कोई पुस्तक भी न पढ़ी जा सकेगी। अर्थात् तब तक रामनाथ का कुछ भी वश न चल सकेगा। ज्यों ही सरदार साहब भले-चंगे हुए कि अपनी पुस्तक तैयार रक्खी है।

इस प्रकार निश्चय कर लेने पर भी कि रामनाथ बंबई को लौट गए, ऐसा विश्वास होने तक वे विट्ठल-बाड़ी छोड़कर कहीं न गए। उन्हें भय था कि रामनाथ न-जाने कब क्या घोटाला कर देंगे। इधर रामनाथ ने भी अपना किराए का घर छोड़कर अपने बंबई चले जाने की बात लोगों पर प्रकट कर दी थी, किंतु उनका बंबई का मुक़ाम बहुत कम दिन का था।

बंबई पहुँचकर कृष्णप्रसाद के साथियों पर अपराध सिद्ध करने

के काम पर एक विश्वास-पात्र मनुष्य को नियत कर तत्काल ही रामनाथ लौट पड़े। अब की बार उन्होंने अपने रहने की व्यवस्था हिंगने में ही की थी।

कितने ही सप्ताह विना किसी विशेष घटना के बीत गए। बीच-बीच में रामनाथ मनोहरलाल से बातें किया करते। प्रशस्त वायु और पौष्टिक पदार्थों के सेवन तथा योग्य औषधोपचार के योग से उनकी प्रकृति बहुत कुछ सुधर गई थी। एक-दो दिन के अंतर से रामनाथ बंबई का एक चक्कर लगा आते। यदि उनकी हलचल पर किसी ने दृष्टि रक्खी होती, तो उन्हें निर्णयसागर-प्रेस में आते-जाते, कई बार देखा होता।

'जब सूर्योदय होगा' पुस्तक को उन्होंने सेठ तुकाराम जावजी को छपने के लिये दी थी। पुस्तक शीघ्र छपकर तैयार हो जानी चाहिए थी, इस कारण रामनाथ ने उसे किसी ग्रंथ-प्रकाशक कंपनी के पास भेज उस पर योग्य और अनुकूल सम्मति मिल जाने पर उसी को प्रकाशन-कार्य सौंपने की गड़बड़ में न पड़कर, उन्होंने अपने ही व्यय से पुस्तक छपवाई। प्रूफ़-संशोधन का काम यद्यपि बड़ी जोखिम और होशियारी का होता है, किंतु उन्होंने स्वयं ही वह बड़े उत्साह से किया। थोड़े ही दिनों में पुस्तक छपकर तैयार हो गई।

पुस्तक यद्यपि छपकर तैयार हो गई थी, तथापि अभी विज्ञापन आदि छपाकर बेचने का काम आरंभ नहीं हुआ था; क्योंकि रामनाथ सबसे प्रथम उसे सरदार साहब को समर्पित करना चाहते थे। परंतु अभी डॉक्टर की आज्ञा में देर थी।

अंत को आज्ञा मिल ही गई। सरदार साहब की तबियत अब बहुत कुछ सुधर चली थी, परंतु अभी उन्हें और भी कई दिनों तक अँधेरी कोठरी में पड़े रहना था। उजेले में जाने की सख़्त मनाही थी। आँख पर हरी पट्टी रक्खी जाती थी।

रामनाथ के जाते ही उन्होंने हृदय से स्वागत कर प्रेम से कहा—"रामनाथ ! बीमार होने के दिन से अभी तक मैंने तुम्हें कई बार याद किया था। उस पुस्तक के संबंध में अभी तक मुझे वैसे ही चटपटी लगी हुई है। क्या उसकी खोई हुई प्रति मिल गई ?"

रामनाथ—"नहीं, परंतु मुझे विश्वास है कि वह आपके घर सुरक्षित रूप से पहुँची अवश्य है।"

सरदार०—"तो फिर वह मुझे क्यों नहीं मिली ? बड़े आश्चर्य की बात है। उस ग्रंथकार के पास उसकी प्रतिलिपि भी है या नहीं ?"

रामनाथ—"हाँ, है तो सही और उस दुर्घटना के दूसरे दिन ही मैं उसे लेकर यहाँ आया था।"

सरदार०—"अरे भाई, उस अत्याचार ने तो सब काम ही बिगाड़ दिया, परंतु अब भी क्या तुम्हारे पास उसकी प्रति यहाँ मौजूद है ?"

रामनाथ—"प्रति क्या ; अब तो छपी हुई पुस्तक ही मैं साथ ले आया हूँ।"

तत्काल ही रामनाथ ने अपनी जेब से एक बढ़िया बाइंडिंग की हुई पुस्तक निकालकर उनके सम्मुख रख दी। पुस्तक को देख वृद्ध ने प्रसन्न होकर कहा—"रामनाथ ! तुमने मुझ पर बड़ा उपकार किया है। इस पुस्तक को पढ़ने की मुझे कितनी उत्सुकता है, सो मैं कह नहीं सकता ! परंतु उपयोग क्या ? मेरी आँखें अभी कुछ-कुछ ठीक हुई हैं, परंतु पढ़ने के लिये डॉक्टर साहब ने सख़्त मनाही कर दी है। ईश्वर जाने आगे और कब तक मैं इस दशा में रहूँगा !"

रामनाथ ने अपनी कुर्सी आगे बढ़ाई और वे वृद्ध के पलँग के पास जा बैठे, और प्रेम-पूर्वक कहने लगे—"सरदार साहब ! पुस्तक पढ़ने की आपको बड़ी उत्सुकता है, इसलिये आपके निमित्त दो घंटे तक मैं ही अपने नेत्रों का उपयोग करूँगा। अर्थात् मैं ही

आपको नित्यप्रति 'जब सूर्योदय होगा' नामक पुस्तक दो घंटे सुनाया करूँगा, तब तो ठीक है न ?"

सरदार०—"रामनाथ ! तब तो तुम्हारे उपकार की सीमा ही न रहेगी, परंतु इसके लिये डॉक्टर साहब की आज्ञा भी तो चाहिए ?"

रामनाथ—"उसके लिये आप चिंता न कीजिए। वह प्रबंध मैंने पहले से ही कर लिया है। अच्छा, तो अब मैं पुस्तक पढ़ना आरंभ करता हूँ, सुनिए।"

उसी समय रामनाथ ने तीन ओर बंद लैंप के उजेले में उस पुस्तक का पढ़ना आरंभ किया। इसी पुस्तक पर रामनाथ ने सारी इमारत खड़ी की थी। वे लगभग चार घंटे तक पुस्तक पढ़कर सुनाते रहे, और वृद्ध तनिक भी न उकताते हुए बड़े प्रेम से उसे सुनते रहे। बीच-बीच में जब कोई विचार उनके मनोनुकूल आ जाता, तब वे आनंद-मग्न हो जाते।

थोड़ा-थोड़ा विश्राम लेकर रामनाथ ने मनोहरलाल का लिखा हुआ सारा भाग उन्हें पढ़ सुनाया। इसके बाद वे चुप हो गए, और सरदार साहब के मुख की ओर बारीकी से देखने लगें।

दो-चार मिनट तक वृद्ध चुपचाप रहे, मानो वे कोई विचार कर रहे हों। वे यद्यपि अँधेरे में थे, तथापि रामनाथ ने देखा कि उनके नेत्रों से अश्रु-धारा बह चली थी। कुछ देर में शांत होकर चीण स्वर में उन्होंने कहा—"रामनाथ ! वास्तव में तुम्हारे कहे अनुसार यह पुस्तक अद्वितीय है। यह काम बड़ी विलक्षण बुद्धिमत्ता का है। इसमें समाज की दशा का चित्र प्रत्यक्ष खींच दिया है। जान पड़ता है कि ग्रंथकार ने ये सब बातें अनुभव-पूर्वक लिखी हैं।"

रामनाथ—"परंतु उसे अपने दुःख की कुछ भी परवा नहीं है !"

सरदार०—"नहीं, बिलकुल ही नहीं ! यह बात तो मैं स्वयं ही जान गया हूँ। समाज के प्रति उसका प्रेम और सहानुभूति

विलक्षण प्रकार की है। लोगों के दुःख के लिये जिसकी आत्मा इतनी अशांत हो जाय, उसे अपने दुःख का स्मरण होना भी कठिन है। सचमुच ही यह विलक्षण पुस्तक है। इसे सुनकर मेरे मस्तिष्क में बड़ी ही खलबली मच गई है। अब मुझे ज्ञात होने लगा है कि समाज-सुधार-संबंधी मेरे विचार बिलकुल भ्रम-पूर्ण, एकमार्गी और संकीर्ण हैं। रामनाथ, "आरंभ से ही तुमने मुझ पर बड़ा उपकार किया है, उसमें और भी थोड़ी-सी वृद्धि करो, यही मेरी इढ़ेच्छा है।"

रामनाथ—"सरदार साहब! आप जो कुछ आज्ञा देंगे, उसे मैं बड़ी प्रसन्नता से पालन करूँगा।"

सरदार—"मुझे इसके लेखक से मिलने की उत्कट इच्छा उत्पन्न हुई है। क्या तुम उसे यहाँ लाने की कृपा करोगे?"

रामनाथ का अंतःकरण आनंद-सागर में डुबकियाँ मारने लगा।

रामनाथ—"ग्रंथकार को मैं अवश्य लाऊँगा, किंतु यदि उसे देख-कर आपको निराशा उत्पन्न हो जाय, तो समझिए कि वह आपकी कल्पना से जुदा निकला!"

सरदार—"यह कैसे हो सकता है। इस पुस्तक से उसका अंतःकरण कितना श्रेष्ठ, उदार होना चाहिए, उसे क्या तुम नहीं समझ सकते? उसे तुम अवश्य लेकर आना। मेरा इतना कार्य तुम अवश्य ही करो। मुझे जिनकी आज तक कल्पना भी न थी, ऐसी कितनी ही बातों का इस पुस्तक से ज्ञान हुआ है। ग्रंथकार विचित्र बुद्धिशाली है। तुम उसे अवश्य ही लाना।"

रामनाथ—"अच्छी बात है, मैं किसी दिन उसे अवश्य लेकर आऊँगा।"

वृद्ध की आंतरिक उत्कंठा देखकर रामनाथ गद्गद हो गए। उन्होंने वृद्ध को सांत्वना देने के लिये फिर कहा—"सरदार साहब!

आपकी तबियत ठीक होते ही मैं 'सुदर्शन' को लेकर आपकी सेवा में उपस्थित होऊँगा। आपको देखकर उसे भी आपकी ही भाँति आनंद होगा। पुस्तक आधी पढ़ी जा चुकी है, शेष भाग को मैं कल आकर पढ़ सुनाऊँगा।"

---

# विंशति परिच्छेद

## धूर्तता की परा काष्ठा

रामनाथ प्रसन्न होकर घर लौटे।

"आधे युद्ध में तो विजय मिल गई है। पुस्तक को सुनने से वृद्ध के मन पर विलक्षण प्रभाव पड़ा है। वास्तव में पुस्तक समाज की दशा का जीवित चित्र है। सरदार साहब को क्या मालूम था, कि पुस्तक के द्वारा मनोहरलाल की आत्मा ही उनसे वार्तालाप कर रही है। आत्मीय जन और देशबंधुओं के प्रति प्रेम और सहानुभूति प्रकट करनेवाली आत्मा की विलक्षणता किस प्रकार की सरल भाषा में वर्णन की गई है! आगे चाहे सो हो, परंतु अभी तक तो अपने व्यूह में सफलता मिल रही है। और आशा है कि चचा-भतीजे में शीघ्र ही मेल हो जायगा।"

इस प्रकार मार्ग में विचारों का ताँता बाँधते हुए रामनाथ आगे बढ़ रहे थे। विट्ठल-वाड़ी से लगभग वे एक मील गए होंगे कि इतने ही में भों-भों करती हुई एक मोटर सामने से आती दिखाई दी। वह ठीक उनके पास आकर ठहर गई। रामनाथ भी तटस्थ रह गए। मोटर में कुल तीन ही मनुष्य थे। भानुप्रसाद, कृष्णप्रसाद और साँवलिया।

रामनाथ को देख भानुप्रसाद आग-बगूला हो उठे। यद्यपि उन्होंने अपनी इस वृत्ति को दबाने का प्रयत्न किया, किंतु वह सब व्यर्थ हुआ, और वे संतप्त होकर बोल उठे—"तुम यहाँ फिर आए, ठीक है, वृद्ध से मिलने गए थे।"

रामनाथ ने ठसक से कहा—"जी जनाब! कहिए?"

भानु०—"जान पड़ता है, आप मुझ पर आक्रमण करेंगे ?"

रामनाथ—"मैं नहीं समझ सकता, आप क्या कह रहे हैं ?"

भानु०—"तुम सब कुछ जानते हो। मेरी अनुपस्थिति में यदि तुम्हारी की हुई कुछ गड़बड़ मालूम हुई, तो..........!"

इतना कहकर भानुप्रसाद चुप रह गए, क्रोध से उनका मुख लाल हो गया। उनकी यह दशा देख रामनाथ ने हँसकर कहा—"तो फिर तुम क्या करोगे ?"

कृष्णप्रसाद ने देखा कि अब ये दोनों लड़ मरेंगे, इसलिये भानुप्रसाद को चुपकर मोटर आगे बढ़ाई। जब तक गाड़ी दृष्टि-ओट न हुई, रामनाथ देखते रहे।

कुछ ही देर के बाद उन्होंने विचारा कि "भानुप्रसाद इस बार बेतरह उखड़ गया है। जान पड़ता है, किसी ने मेरे आने की ख़बर इन्हें तार द्वारा कर दी है। इसी से यह घबराया हुआ चला आ रहा है। परंतु अब क्या है ! पुस्तक छपाई, और वह आधी के लगभग पढ़कर सुना भी दी गई। जब यह बात भानुप्रसाद को मालूम होगी, तब उसका मुँह देखने योग्य ही बन जायगा। यदि अब फिर मैं गया, तो खुल्लम-खुल्ला झगड़ा होकर बेचारे वृद्ध को व्यर्थ का संताप होगा।

इस प्रकार विचार करते हुए रामनाथ बड़ी देर तक मार्ग में ही खड़े रहे। इसके बाद कुछ स्मरण-सा हो आने पर वे फिर विचारने लगे कि "अभी ही मेरा बिट्ठल-बाड़ी लौट जाना ठीक है। कदाचित् वह कुछ गड़बड़ करेगा !"

रामनाथ वैसे ही बिट्ठल-बाड़ी को लौट चले। द्वार पर ही उन्हें परिचारिका मिली। उसके मुख पर घबराहट का चिह्न देख रामनाथ ने पूछा—"क्या है ? क्यों बाई ! तुम इतनी उदास क्यों हो ?"

परिचारिका—( रोते हुए ) "क्या कहूँ ! सरदार साहब को किसी ने विष दे दिया।"

रामनाथ एकदम पीछे हट गए—"क्या विष दे दिया ?"

परिचारिका—"हाँ, डॉक्टर तो ऐसा ही कहते हैं। अब भी वे उनके पास ही बैठे हुए हैं। ईश्वर जाने क्या विचित्र लीला है। अभी-अभी तो उन्हें आराम होने लगा था !"

रामनाथ उसकी बातें आगे को न सुनते हुए तत्काल सरदार साहब की कोठरी में जा पहुँचे। डॉक्टर गोखले उन्हें वहीं मिले। रामनाथ को देख उन्होंने कहा—"रामनाथ! देखिए, यह कैसी दुर्घटना है। आपने सब हाल सुना होगा।"

रामनाथ—"हाँ, कुछ हाल मालूम हुआ है, परंतु विष किस प्रकार दिया गया ?"

डॉक्टर—औषधि में मिलाकर, क्योंकि दवाई के प्याले की पेंदी में कुछ सफ़ेद वस्तु लगी हुई है। कौन-सा विष है, इसकी परीक्षा तो घर जाकर कर सकूँगा, परंतु भानुप्रसाद अभी ही पुलीस को लेने गए हैं।"

रामनाथ—( आश्चर्य से ) "क्या इतने नौकर रहते हुए भानुप्रसाद स्वयं गए ? उनका संदेह किस पर है।"

डॉक्टर—"उनका नाम लेने से बड़ा दुःख होगा। अब तो वह विचार ही छोड़िए। देखो वह पुलीस आ गई।"

दो सिपाहियों के साथ एक हवल्दार को लेकर भानुप्रसाद आ पहुँचे। इस घटना को जानने के लिये रामनाथ वहीं छिपकर देखते रहे।

भानुप्रसाद ने परिचारिका के कान में कुछ कहा, और वे उसी समय ऊपर चले गए। दो-तीन मिनट बाद ही वे नीचे उतरे। उनके साथ विमला भी थी। भानुप्रसाद ने सिपाहियों से कहा—"यही लड़की है। इसे एकदम क़ैद कर लो।" बेचारी विमला एकदम दुःख की चीत्कार खींचकर मूर्च्छित हो गिर पड़ी। तत्काल रामनाथ आगे बढ़े और परिचारिका से कहा—"विमला को सँभालो।" ( पुलीस से ) "तुम

यह क्या कर रहे हो, किसे पकड़ोगे?" हवल्दार ने कहा—"हम इस छोकरी को पकड़ने आए हैं?"

रामनाथ—"परंतु इस पर अपराध क्या लगाया गया है?"

भानु०—( भौंहे तानकर ) "पारे का विष खिलाने का।"

डॉक्टर--( आश्चर्य से ) "तो क्या पारे का विष खिलाया गया है? तुम्हें यह कैसे ज्ञात हुआ?"

रामनाथ—"डॉक्टर साहब! इन्होंने अपना अपराध अपने ही मुँह से गुप्त रूप में कह सुनाया है! क्या आप समझे?" ( पुलीस से ) "हवल्दार! तुमने मुझे पहचाना? मैं कहता हूँ तुम इस ( भानुप्रसाद ) को पकड़ लो!"

भानुप्रसाद ने घबराते-घबराते कहा—"ख़बरदार! अगर आगे बढ़े...... ।"

परंतु भानुप्रसाद की जेब से निकाली हुई पिस्तौल छीनकर पुलीस ने उसके हाथ में हथकड़ियाँ डाल दीं। इसके बाद रामनाथ ने कहा—"हवल्दार! इसे अभी यहीं रखकर पूना से एक पार्टी को झटपट बुलवाओ। इसके साथी अभी यहीं होंगे, उन्हें भी इसके साथ ही पकड़कर ले चलो!"

भानुप्रसाद ने दाँतों से होंठ चबाकर कहा—"तुम्हारा नाश हो!"

रामनाथ—"तुम-जैसों के आशीर्वाद की अपेक्षा गालियाँ मुझे अधिक प्रिय हैं।"

इधर डॉक्टर साहब विमला को सचेत करने का प्रयत्न कर ही रहे थे। उस बेचारी की बड़ी दुर्दशा हो रही थी। मुँह निस्तेज बन गया था।

पाँच मिनट के बाद ही उसे चेत हुआ। रामनाथ ने उससे पूछा—"विमला! तुम पर भानुप्रसाद ने ऐसा भयंकर अपराध लगाया। तुम्हारा इस विषय में क्या तर्क है? इस अमानुषी घटना का कुछ निराकरण कर सकती हो?"

यद्यपि विमला अभी पूर्णतया स्वस्थ न हो पाई थी, तथापि अवसान करके उसने सब हाल सुनाया। वह कहने लगी—"आपके जाने के पश्चात् काका ने मुझे बुलाया। मुझे उनकी बात पर आश्चर्य हुआ, क्योंकि उस दिन से आप जानते ही हैं कि आज तक उन्होंने मुझसे एक अक्षर भी न कहा था। कारण कुछ भी समझिए, किंतु मुझे उनकी चर्चा में विलक्षण परिवर्तन दिखाई पड़ा। उन्होंने मुझे अपने पास बिठाकर कहा—

"बेटी विमला! उस दिन मैंने तेरे साथ बड़ी कठोरता का बर्ताव किया था, उसके लिये आज मुझे अंतःकरण से खेद है। मैंने जो कुछ कहा उस पर तू ध्यान मत देना, और न उसके लिये कुछ दुःख ही मानना। मुझे अब अनेक बातों का पश्चात्ताप हो रहा है। तुझे मेरी ये बातें विचित्र जान पड़ेंगी, परंतु मेरे हृदयांधकार को दूर कर वास्तविक ज्ञान का भास करानेवाली शिक्षा मुझे आज ही मिली है। मेरा आयुष्य-क्रम बिलकुल ही संकुचित और एकमार्गी था, यह बात मुझे अभी ज्ञात हुई है। मुझे अपने आचरण के विषय में गर्व था कि मैं बड़ा न्यायी और स्पष्ट व्यवहारवाला हूँ; किंतु अब मुझे विश्वास हो गया कि वह संकीर्ण और अनुदार था। मैंने अपना सारा जीवन एकांतवास में ही व्यतीत कर दिया। इसी कारण मुझे संसार का वास्तविक ज्ञान बिलकुल ही प्राप्त न हुआ। व्यवहार की साधारण-सी बातें भी मुझे ज्ञात न हुईं। मेरे इस एकाकी स्वभाव के कारण अंतःकरण की उच्च वृत्तियाँ भी नष्ट हो गईं। अब मुझे अज्ञता का ज्ञान हुआ, और सच्ची बात समझ में आई। रामनाथ ने मुझ पर बड़ा उपकार किया है। उन्होंने मुझे एक पुस्तक पढ़कर सुनाई, उसी पुस्तक से मेरे मस्तिष्क पर एकदम प्रकाश पड़ा। विमला! गई बातें फिर नहीं आ सकतीं, परंतु अब आगे के लिये मैं तुझे सुखी करने का अवश्य प्रयत्न करूँगा। मेरी कठोरता और मेरे दुराग्रह के

लिये तू मुझे क्षमा प्रदान कर।" इतनी बातें कहकर वे रोने लगे और मुझे हृदय से लगाकर उन्होंने फिर कहा—"बेटी! अब मैं ऐसी उजड्डता कभी न कर तुझे सुखी बनाऊँगा।"

कुछ देर ठहरकर विमला फिर कहने लगी—"मुझे भी बड़ा आनंद हुआ, झगड़े की बात हम भूल गए। कुछ देर, दूसरी अनेक बातें होती रहीं। इतने ही में उन्हें औषधि देने का समय हो गया, और मुझे ही उन्होंने औषधि पिलाने को कहा। उस समय कोठरी में और कोई भी न था। मैं ज्यों ही परिचारिका को बुलाने उठी, तो दरवाज़े के पास जाकर किवाड़ खोलते ही मुझे भानुप्रसाद दृष्टि-गोचर हुए। वे घुटने टिका, कान लगाकर सब बातें सुन रहे थे। मुझे आश्चर्य हुआ।"

रामनाथ—"उसके कान दराज़ के पासवाले छेद से लगे होंगे, क्यों?"

विमला—"मुझे भी पहले तो वैसा ही जान पड़ा, परंतु दरवाज़ा खोलते ही वे कुछ गड़बड़ाए-से जान पड़े; किंतु साथ ही 'क्या चाहिए' यों कहकर वे दवा लेने चल दिए। दो मिनट बाद ही एक प्याले में दवा लेकर वे आ गए, और वह प्याला मुझे सौंप चटपट वहाँ से चल दिए। दवा मैंने अपने हाथ से ही पिलाई, किंतु उसे पीने के साथ ही काका के शरीर में भयंकर परिवर्तन होता दिखाई दिया। उनका मुँह फ़क़ से उतर गया और मृत्यु के चिह्न दिखाई दिए। मैं घबरा गई और डॉक्टर को बुलाने भेजा। डॉक्टर साहब ने आते ही मुझे अपने कमरे में चले जाने को कहा। मैं बाहर निकल आई। बस, यही मैं जानती हूँ। परंतु कैसा अनर्थ! दो घंटे पूर्व हम प्रेम से बातें कर रहे थे।" हर-हर!............। बोलते-बोलते ही विमला रोने लगी। रामनाथ ने बड़ी कठिनता से समझा-बुझाकर उसे चुप किया। वे कहने लगे—

"विमला ! अब घबराने की आवश्यकता नहीं। काका अब शीघ्र अच्छे हो जायँगे। समय पर ही उनका औषधोपचार आरंभ हो जाने से अब कुछ भय नहीं रहा। तुम पर भानुप्रसाद ने जो दोष लगाया, वह बिलकुल मिथ्या है। इसमें तिल-मात्र भी संदेह नहीं कि विष-प्रयोग भानुप्रसाद के सिवा और किसी ने नहीं किया। यह विष क्या था, सो बतलाने में चकमा खा गए। उन्हें यह बात कैसे ज्ञात हुई कि पारे का विष दिया गया है। वे कोई डॉक्टर तो हैं ही नहीं।"

विमला—"परंतु सरदार साहब को मार डालने से उनका अर्थ क्या था?"

रामनाथ—"यह सब संपत्ति, सरदार साहब ने जो विल बनाया, उसकी सब बातें तो तू जानती ही है!.........उस विल में उन्होंने अपनी संपत्ति का अधिकांश भाग उन्हें देना लिखा है। जब उन्होंने छिपकर तुम्हारी सब बातें सुन लीं, उस समय उन्हें विचार हुआ कि कहीं इनकी संपत्ति से कुछ गड़बड़ न हो जाय। विल में कुछ फेर-फार न कर दिया जाय। संभव है, ऐसी दशा में अपने हाथ कुछ न लगे। इसके सिवा और भी कई कारण हैं, जिनकी धुन समाने से ही वे इस घोर-कर्म को करने के लिये प्रवृत्त हुए हैं। परंतु ईश्वर ने ही रक्षा की। उसका प्रयत्न व्यर्थ गया। अब निश्चय रक्खो कि सरदार साहब शीघ्र ही स्वस्थ हो जायँगे और सब बातें व्यवस्थित हो जायँगी।"

# एकविंशति परिच्छेद

## सुदर्शन

सरदार माधवप्रसाद स्वस्थ हो गए; किंतु आरोग्य होने में उन्हें कई सप्ताह कष्ट भोगना पड़ा। विष-प्रयोग के पश्चात् जब उन्हें होश हुआ, तो उन्होंने सबसे प्रथम विमला की चौकसी की। विमला भी उसी समय पास में जा बैठी और उसने अपनी मीठी-मीठी बातों से वृद्ध को प्रसन्न कर लिया।

सरदार साहब ने उसे हृदय से लगाकर कहा—"यद्यपि मैं अस्वस्थ अवश्य हूँ, किंतु पहले की अपेक्षा अधिक सुखी हूँ। इस अवस्था में ही मैंने अनेक नई बातें सीखी हैं। संसार का मुझे बहुत कुछ अनुभव मिल चुका है। सारांश, मेरे सभी विचार बदल गए हैं। अब मैं पहले की दशा में नहीं रहा। अब मैं तेरे साथ कभी कठोरता का बर्ताव नहीं करूँगा।"

विमला—"काका! आप ऐसा क्यों कह रहे हैं? क्या आपने मुझ पर कम कृपा की है।"

सरदार०—( निःश्वास त्यागकर ) "नहीं बेटी! मैंने हमेशा ही तेरे साथ प्रेम का बर्ताव नहीं किया; पर अब मैं इस आदत को भूल जाऊँगा। गई बातों के लिये अब मुझे पश्चात्ताप हो रहा है। दूसरे की इच्छा और मनोविकार के लिये आदर-भाव रखना कितना आवश्यक है, सहानुभूति और समान भाव किसे कहते हैं, ऐसी एक-दो ही क्या, लाखों बातें रामनाथ की सुनाई हुई पुस्तक से मुझे ज्ञात हुई हैं। समाज-संबंधी मेरी कल्पनाओं में उस पुस्तक ने बड़ी क्रांति उत्पन्न कर दी है। पुस्तक का नाम भी कितना उत्तम और सार्थक

है। 'जब सूर्योदय होगा' अहा! एकमार्गी विचारों और दुराग्रह की रात्रि के बीतने पर अब सूर्योदय हुआ है। इतने दिनों तक मैं रात्रि के अंधकार में धक्के खा रहा था। अब सूर्य का प्रकाश पड़ने से मेरा पुनर्जन्म-सा हो गया है। मेरे लिये तो यह प्रकाश पर्याप्त है, फिर भले ही आगे के लिये अथवा भविष्य की प्रजा के लिये यह उनके मस्तिष्क अथवा ज्ञान-तंतुओं पर गिरे या न गिरे!"

इस प्रकार प्रेम-पूर्वक वार्तालाप करते हुए सरदार साहब ने फिर कहा—"रामनाथ कहाँ हैं? वे आज मुझे उस पुस्तक का अगला भाग सुनानेवाले थे।"

रामनाथ—( आगे बढ़कर ) "सरदार साहब, मैं यहीं हूँ। आपकी ही प्रतीक्षा में था।"

सरदार०—"रामनाथ! तुम्हें देख मुझे इतना अपूर्व आनंद होता है, जिसे मैं वर्णन नहीं कर सकता। वह पुस्तक आधी ही रह गई। मेरी इच्छा है कि मैं उसे फिर एक बार आरंभ से सुनूँ। कहो, फिर कब सुनाओगे?"

रामनाथ—"सरदार साहब! मैं यह पुस्तक पढ़ने का कार्य एक योग्य मनुष्य को सौंपता हूँ। स्वतः ग्रंथकार ही आपको पुस्तक सुनावेंगे।"

सरदार०—"क्या? सुदर्शन! स्वतः सुदर्शन!! अच्छा, तो वे हैं कहाँ?"

रामनाथ—"वे यहीं हैं।"

सरदार साहब की कोठरी का द्वार थोड़ा-सा खुला हुआ था। तत्काल ही रामनाथ के संकेतानुसार एक मनुष्य वहाँ आ खड़ा हुआ। उसका मुख बिलकुल ही निस्तेज दीखता था, किंतु यह निस्तेजपन उसकी बीमारी का नहीं, वरन् सरदार साहब के पलँग के निकट जाते समय मानसिक दबाव का था। यद्यपि उस व्यक्ति ने पास पहुँचकर केवल

काका ! काका !! ही दो बार मुख से उच्चारण किया, परंतु इन्हीं दो शब्दों में कुछ विलक्षण प्रकार के आत्मीय भाव का जादू भरा था।

सरदार साहब चौंक उठे और कहने लगे—"यह आवाज़ ! यह तो आज कितने ही वर्षों के बाद सुनी है। यही आवाज़ मुझसे स्वप्न में—सुंदर स्वप्न— में कुछ बातें कह गई है। रामनाथ की सुनाई हुई पुस्तक में भी इसी आवाज़ से निकले शब्दों को मैंने सुना है। भला यह आवाज़ किसकी होगी ? मैं भूलता तो नहीं। छिः ! ऐसी भूल होना कभी संभव नहीं है। मनोहर, मेरा भतीजा, मेरे अग्रज का पुत्र, बस, उसी की यह आवाज़ है। मनोहर !"

मनोहरलाल—"काका ! मैं ही आपका अभागा मनोहर हूँ।"

सरदार०—( स्वगत ) "प्रभो ! आज मैं अपने को धन्य समझता हूँ ! मेरा प्यारा भतीजा मुझे आज फिर मिल गया। मनोहरलाल, तू मेरे पास आ।"

वृद्ध ने मनोहरलाल को हृदय से लगा लिया और दोनों अच्छी तरह मिले। उनकी इस प्रेम-भेंट में मिनट-भर के लिये आत्मा आत्मा में और अंत करण हृदय में मिलकर एक हो गए। अज्ञानता के कारण इतने वर्ष का दुराभाव किया हुआ प्रेम सहसा उमड़ पड़ा। उस प्रेम-प्रवाह में सारा मनोमालिन्य बह गया। आनंदाश्रु के दिव्य जल ने सबको गंगोदक-तुल्य पवित्र कर दिया।

सरदार साहब ने प्रेम-पूर्वक पूछा—"मनोहर ! मैं अभी तक यह नहीं समझ सका हूँ कि 'जब सूर्योदय होगा'-नामक पुस्तक से तेरा क्या संबंध है ?"

मनोहरलाल ने कहा—"काका साहब, समुचित संबंध मेरा नहीं।" मनोहरलाल आगे कुछ कहना चाहते थे; किंतु इसी बीच रामनाथ ने उन्हें रोककर वृद्ध से कहा—"उस पुस्तक का प्रत्येक अक्षर मनोहर-लाल के मस्तिष्क की ही उपज है। वह पुस्तक इनके अंतःकरण

अथवा आत्मा की प्रत्यक्ष छाया है !" सरदार साहब ने मनोहरलाल से कहा—"बेटा ! मैं तो समझा था कि तू अपनी सारी ज़िंदगी दुर्व्यसनों में ही नष्ट कर देगा; ( कंठ भर आया ) परंतु तूने ऐसा अपूर्व ग्रंथ लिखकर दिखाया । पुत्र ! क्या तू मेरे अपराधों को क्षमा न करेगा ? परंतु मेरे घर से निकल जानेवाला मनोहरलाल तू ही है क्या ?"

मनोहरलाल—"काका ! हाँ, मैं ही आपका हतभाग्य मनोहर हूँ । काका ! मुझे ही आपसे क्षमा-याचना करना चाहिए । उस पुस्तक के संबंध में यदि पूछते हो, तो सचमुच ही इस प्रशंसा के लिये मैं पात्र नहीं हूँ ; क्योंकि पुस्तक का सारा भाग मेरा लिखा हुआ नहीं है !"

सरदार०—"संपूर्ण भाग तेरा लिखा हुआ न हो, तो भी क्या है । यदि इसमें का स्वल्पांश भी तेरे मस्तिष्क की उपज हो, तो भी मैं बहुत समझता हूँ । उसी पर से लेखक की बुद्धिमत्ता की कल्पना हो सकती है। पंचमोल्लास के प्रास्ताविक अंश का तो लेखक तू ही है न ? वह अंश मुझे बड़ा प्रिय लगा है । उसे फिर एक बार सुनने की मुझे प्रबल इच्छा है । क्या तू पढ़कर सुनावेगा ? परंतु तू जो कहता है कि इसका संपूर्ण भाग मेरा लिखा हुआ नहीं है, तो फिर तुझे सहायता किससे मिली ?"

मनोहरलाल—"रामनाथ ही मेरे एक-मात्र सहायक हैं ।"

सरदार०—"रामनाथ ! तुमने आज तक मुझसे यह बात छिपाई क्यों ?"

रामनाथ ने पहले तो चुप रहना उचित समझा, किंतु थोड़ी ही देर में उनका विचार बदल गया और वे सामने आकर कहने लगे—

"इस पुस्तक के संबंध में मैंने जो कुछ अल्प-स्वल्प प्रयत्न किया है, उसे प्रकट करने की मेरी बिलकुल इच्छा न थी; किंतु जब मेरा नाम संपादक अथवा सहायक के नाते लिया गया है, तो फिर संपूर्ण घटना

सुना देना मैं उचित समझता हूँ। इसके बाद मेरा भाग बहुत अल्प है, और जो कुछ है वह भी मनोहरलाल की टिप्पणियों से लिखा गया है। इत्यादि बातें रामनाथ ने यथातथ्य सुना दीं।"

मनोहरलाल बार-बार कहते कि "इस पुस्तक का दूसरा भाग बिलकुल ही रामनाथ का ही लिखा हुआ है, और उसके श्रेय-भागी भी ये ही हैं", किंतु रामनाथ इसे स्वीकार न करते। वारंवार वे अपनी बात का आग्रह-पूर्वक प्रतिपादन करने के लिये कहते कि "आपकी टिप्पणियों को विस्तार-पूर्वक लिखने के सिवा मैंने कुछ भी अधिक नहीं किया!" इनकी बातों को सुनकर सरदार साहब ने कहा—"यह तो सब ठीक है, परंतु रामनाथ! तुमने इस पुस्तक के पूरी करने में इतनी शीघ्रता क्यों की? मनोहरलाल के स्वस्थ होने तक प्रतीक्षा क्यों न की!"

रामनाथ ने बड़ी चतुरता से भानुप्रसाद के सब क्रूर कृत्य और संपूर्ण संपत्ति पाने की आशा से रचे हुए षड्यंत्र का सब हाल कह सुनाया।

सरदार साहब ने कहा —"उसके विष-प्रयोग का कारण अब मैं समझा। निराश होकर उसने यह अंतिम चाल चली है।"

रामनाथ ने कहा—"उनकी इच्छा थी कि यह पुस्तक मेरे नाम से प्रकाशित होकर आपके सम्मुख प्रकट की जाय। उसने कृष्ण-प्रसाद द्वारा मनोहरलाल की मूल पुस्तक चुराई थी, वह अब मेरे हाथ लगी है। देखिए, यही वह पुस्तक है। इसे ही पूरी कर वह अपनी बनाना चाहता था।"

सरदार साहब ने दुःख-पूर्वक निःश्वास त्यागते हुए कहा—"रामनाथ, ऐसे पाजी मनुष्य के विश्वासघात और नमकहरामी के कृत्यों को प्रकट कर तुमने मेरे अज्ञानांध नेत्रों के सामने का पर्दा हटा दिया। यही मुझ पर तुमने बड़ा भारी उपकार किया है। अन्यथा मेरे हाथों

न-जाने क्या-क्या अन्याय होते। उस चोर की बातों में आकर मैं अपने आत्मीय जनों को भी भूल गया था; परंतु अब मेरे नेत्र खुल गए। प्रभो! तेरी लीला अपार है। गई बातें अब शीघ्र ही सुधारी जा सकेंगी। बेटा मनोहर! लक्ष्मी कहाँ है?"

मनोहरलाल—"वह भी आपके दर्शनार्थ यहीं उपस्थित है, साथ में आपका पौत्र रामेश्वर भी है। ये लोग बाहर आपकी इस आज्ञा की प्रतीक्षा में ही बैठे हुए हैं।"

सरदार साहब ने आनंद से गद्गद होकर कहा—"क्या बेटा रामू भी आया है। अच्छा, तो उन दोनों को यहाँ बुलवाओ, मैं उनसे शतशः क्षमा-याचना करूँगा।"

आगे का दृश्य वर्णन करने की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती, क्योंकि इस प्रकार के मिलाप का पर्यवसान आनंद में ही होता है। इस भेंट का दृश्य भी वही था।

सरदार साहब ने नतमस्तक हो लक्ष्मीबाई से कहा—"मेरी लाड़िली! पहले तू जिस समय मेरे पास आई थी, तब मैंने तेरे साथ बड़ी कठोरता का व्यवहार किया था। उस समय मुझे तेरे सद्गुणों की परीक्षा न हुई थी। सरकारी पाठशालाओं में पढ़नेवाली लड़कियाँ अल्हड़ और वाचाल हुआ करती हैं, ऐसा ही मुझे दृढ़ विश्वास था। इसी कारण मैंने तेरे साथ ऐसा व्यवहार किया। परंतु अब मनोहर-लाल की पुस्तक ने मेरे अज्ञानांध नेत्रों में ज्ञानांजन की शलाका फेर-कर मेरी दृष्टि स्पष्ट और व्यापक बना दी है। मेरी बातों के लिये तू मुझे अंतःकरण से क्षमा प्रदान कर। ईश्वर तेरा कल्याण करेगा। मेरा आशीर्वाद व्यर्थ नहीं जा सकता। बेटा रामू कहाँ है?"

तत्काल ही रामेश्वर ने भी सरदार साहब के चरणों में साष्टांग प्रणाम किया। सरदार साहब ने उसे उठाकर हृदय से लगाया और कहा—"बेटा! मुझे क्षमा कर!"

रामेश्वर ने कहा—"बाबा ! यह उल्टी प्रथा कैसी ? मैं आपसे क्षमा-प्रार्थी हूँ !" सरदार साहब ने विमला को पास बुलाया और रामेश्वर के हाथ में उसका हाथ देकर कहा—"बेटा ! इसे अपनी सह-धर्मिणी बनाकर मुझे सुखी कर । ईश्वर तुम्हें चिरायु करे ।"

---

# द्वाविंशति परिच्छेद

## 'जब सूर्योदय होगा'

चचा-भतीजे में मेल हुए आज चार ही दिन हुए थे। सरदार साहब के आग्रह से मनोहरलाल उन्हें पुस्तक सुना रहे थे, इतने ही में रामनाथ आ पहुँचे। सरदार साहब ने बड़े प्रेम से उन्हें अपने पास बिठाकर कहा—"रामनाथ! इस पुस्तक का सर्वोत्कृष्ट और मेरा प्रिय भाग आज मैं पुनः सुन रहा हूँ। पंचमोल्लास का प्रास्ताविक भाग मुझे विशेष उत्कृष्ट जान पड़ा है। अब तक मैंने ५-६ बार उसे सुना है, तो भी अभी मुझे इच्छा बनी ही हुई है। अहा! उसमें कितना मार्मिक और युक्ति-युक्त विवेचन है। कैसी मनोहर भाषा है। रामनाथ, तुम इधर पास में कुर्सी हटा लो। अच्छा, मनोहरलाल, तू पढ़! हम सुनते हैं।" मनोहरलाल पढ़ने लगे—

शारीरिक कष्ट उठाकर उदर निर्वाह करनेवाले निम्न श्रेणियों के समझे जानेवाले लोगों की दशा सुधारने की ओर समाज के नेताओं का ध्यान नहीं जाता। यह बड़े खेद की बात है। स्वयं श्वेत वस्त्रधारी उच्च प्रति के अथवा सुशिक्षित कहे जानेवाले, किंवा उनके अनुयायियों को इन निम्न कोटि के अपार कष्ट सहनेवालों का वास्तविक मूल्य ज्ञात नहीं। यह कहना अतिशयोक्ति न होगा।

ताजमहल के प्रेक्षक का ध्यान उसकी मीनारों की ओर जाना स्वाभाविक बात है, परंतु वे मीनारें जिन नींव के पत्थरों पर खड़ी की गई हैं, उनकी ओर किसी का भी ध्यान

नहीं जाता। इसी प्रकार की कुछ बातें इन निम्न वर्गस्थ लोगों के संबंध में होती दीख पड़ती हैं। उनके कष्ट और कठिन श्रम तथा सुख-दुःख की ओर समाज के शिष्ट लोगों का ध्यान नहीं जाता। इसी से उन्हें इनकी कुछ परवाह नहीं है। समाज में ही उनकी भी गणना है और समाज-समाज कर चिल्लानेवाली सभा-संस्थाओं में ही उनका भी आविर्भाव होता है। इस बात की उन महानुभावों को कल्पना तक नहीं है! उनके समाज-शब्द की व्यापकता अब बिलकुल ही संकुचित-सी हो गई है। यदि यह भी कह दिया जाय कि उन्हें समाज-शब्द का अर्थ तक ज्ञात नहीं है, तो अनुचित न होगा। किंतु जिन लोगों के लिये हम इतने बेपरवाह हैं, वे ही समाज के सच्चे और मुख्य आधार-स्तंभ हैं, और वे ही समाज के महत्त्व-पूर्ण अवयव हैं, वे हैं तभी तक समाज है। सारांश, वे ही स्वयं समाज हैं। इसे अच्छी तरह याद रखना चाहिए कि समाज की सच्ची सामर्थ्य इन्हीं लोगों पर अवलंबित है। समाज की भली अथवा बुरी स्थिति, उसका उत्कर्ष अथवा अपकर्ष, प्रगति अथवा परागति, इन्हीं लोगों पर निर्भर है। "राष्ट्र की आत्मा झोंपड़े में रहा करती है।"

इस महावाक्य का भावार्थ यही है कि झोंपड़े में रहनेवाले, शारीरिक श्रम उठाकर पेट भरनेवाले लोग ही राष्ट्र अथवा समाज के उत्कर्षापकर्ष के आदर्श हैं। किंतु इन लोगों के न तो कोई स्मारक बनाता है, न इन्हें गाड़ी-घोड़ों पर बिठा कोई जुलूस ही निकालता है, तथापि समाज के नाते मानी जानेवाली जनता से विच्छेद पाए हुए ये हीन कोटि के

लोग ही समाज के सच्चे आधारभूत हैं। इन लोगों के विना न तो समाज का ही कुछ अर्थ है, न उसकी कुछ शोभा ही है। व्यास-गद्दी पर बैठकर गीता का उपदेश देनेवाले, मेघ-गर्जना के समान घोर शब्दों में राजनैतिक प्रश्नों पर व्याख्यान देनेवाले, नित्यप्रति समाचार-पत्रों के बड़े-बड़े कालम रँगनेवाले, शाब्दिक शक्ति बढ़ाकर न्याय-शास्त्र की सहायता करनेवाले, रोग निवारणार्थ औषधालय स्थापित करनेवाले—सारांश, जितने-भर उच्च प्रति के समझे जानेवाले लोगों की समाज को आवश्यकता है, उतनी ही, किंबहुना, उससे भी अधिक—सुतार, तेली, तँबोली, नाई, धोबी, लुहार, कुम्हार, मोची। मिलों में कठिन परिश्रम करनेवाले अथवा बोझा ढोनेवाले लोगों की भी समाज को आवश्यकता है। ये लोग समाज रूपी राष्ट्र के हाथ-पाँव हैं। हाथ-पाँव जब स्वस्थ होंगे, तभी मस्तिष्क की प्रखरता का राष्ट्र के लिये उपयोग हो सकेगा। मस्तिष्क चाहे जैसा तीव्र हो, तो भी उसके द्वारा योजित कल्पना को कार्य-रूप में कर दिखाने के लिये यदि हाथ-पाँव ही पुष्ट न हों, तो उस कल्पना का क्या उपयोग हो सकता है। हाथ-पाँव के अभाव से वह कल्पना कोरी कल्पना ही रह जायगी, और उसे कृति रूप में देखने का किसी को मौक़ा भी न मिल सकेगा। किंतु हाथ-पाँव के पुष्ट होने पर एक बार मस्तिष्क की दुर्बलता भी घट जायगी।

व्यक्तिगत सैनिकों की उत्तमता सेनापति की मानसिक दुर्बलता को प्रकट नहीं होने देती। किंतु यदि सैनिक ही निर्बल हो, अथवा रणभूमि पर दिखाने-योग्य शौर्य उनमें न हो, तो वे

'मॉटके'-सदृश रण-पंडित की व्यूह-रचना से भी कुछ लाभ न उठा सकेंगे। फ्रेंच-जर्मन-युद्ध के इतिहास में 'मॉटके' का नाम ही प्रत्येक स्थान पर लिखा हुआ मिलेगा। परंतु जिन सैनिकों के स्वदेश प्रेरित पराक्रम ने जर्मनी को प्रथम श्रेणी की राष्ट्र-पंक्ति में ला बिठाया, उनकी संख्या बतलानेवाले अंकों के सिवा उस इतिहास में कहीं उनका नाम तक नहीं मिलता। युक्ति, सुगमता और व्यावहारिक दृष्टि से कदाचित् इन पंक्तियों का जिस प्रकार समर्थन हो सकता है, उसी प्रकार रण-भेरी अथवा रण-वाद्य के बजानेवाले की 'मॉटके' से कोई तुलना भी नहीं कराना चाहता।

सारांश यही है कि जर्मनी की कीर्ति और प्रभुता को 'मॉटके' के व्यूह की जितनी आवश्यकता थी, उतनी ही स्वदेश-वैभव के लिये आत्म-समर्पण करने को उद्यत होनेवाले निम्न वर्गस्थ सैनिकों की भी थी।

नेपोलियन की विजय इतिहास-प्रसिद्ध बात है, किंतु उसे भी इस विजय-प्राप्ति के लिये सैनिकों की यथोचित सहायता लेनी पड़ी थी। इसी से वह विजयी भी हुआ। उस विजय के लिये जिन-जिन बातों की आवश्यकता थी, वे सब नेपोलियन में मौजूद थीं। जिस समाज में रहकर वह छोटे से बड़ा हुआ, उसी समाज के उतनी ही संस्कृतिवाले और उसी श्रेणी के सैनिकों की यदि उसे सहायता न होती, और भिन्न संस्कृति तथा भिन्न कोटि के सैनिकों से उसे काम पड़ता, तो फ्रांस के इतिहास में आज नेपोलियन का कहीं नाम भी न मिलता। इस प्रकार इतिहास में स्वर्णाक्षरों से नाम

लिखानेवाले एक नेपोलियन के तैयार करने के लिये समाज में दूसरे लाखों नेपोलियन तैयार करना पड़ते हैं। समाज का वास्तविक मूल्य, सामर्थ्य और उसका सच्चा गौरव, ये सब बातें इतिहास से अप्रकट लाखों नेपोलियनों पर ही अवलंबित हैं। यदि ये दूसरे नेपोलियन न होते, तो कभी संभव न था कि कोई नेपोलियन को जान लेता। कितनी ही बार तो इतिहास के नेपोलियन भी 'जिन पर बड़प्पन का बोझ लदा है' उस श्रेणी के लोग ही पाए जाते हैं। किंतु ये नेपोलियन न तो समाज का निर्माण ही कर सकते हैं, न उन पर समाज की सच्ची सामर्थ्य ही अवलंबित होती है। वह रहता है एकमात्र समाज के निम्नश्रेणिस्थ अछूत लोगों पर।

स्पेन के दूसरे फ़िलिप ने 'अजेय सेना' लेकर इँगलैंड के तट पर चढ़ाई की, उस समय वहाँ के बहुजन समाज में तद्देशीय हीन कोटि के लोगों अर्थात् तेली, धोबी आदि के हृदय में स्वदेश-भक्ति का संचार न किया होता, अथवा समाज के अग्रगण्य लोगों ने उनके अंतःकरण स्वदेश-प्रेम से परिप्लुत न कर दिए होते, तो 'ड्रेक' या 'हॉकिंस' अथवा 'हावर्ड' या 'फ्रेबिशर' के टूटे-फूटे शब्दों ने फ़िलिप की अजेय सेना पर कभी विजय प्राप्त न की होती।

संस्कृत में जिसे "प्रधान मल्लन्याय" कहते हैं, वह यही है। हमारे यहाँ के अखाड़ों के नाम ही इस न्याय के बिलकुल व्यावहारिक उदाहरण हैं। प्रधान मल्ल मि० जोग के नाम से उनके अखाड़े ने भी जोग का अखाड़ा नाम पाया।

परंतु उसकी प्रसिद्धि के लिये अखाड़े के अनेक मल्लों के पराक्रम की आवश्यकता थी। परंतु समाज ने केवल 'मि० जोग' को ही जाना।

नींव के पत्थर कीचड़ में पड़े होते हैं, और उनकी ओर किसी का ध्यान भी नहीं जाता। पर यदि वही पत्थर कच्चे और बेकाम हों, तो उन पर खड़ी की हुई मीनारें कितने दिन ठहर सकेंगी, यह बतलाना कठिन है। जिस प्रकार उन मीनारों की स्थिति कीचड़ में अज्ञात वास स्वीकार करनेवाले पत्थरों पर निर्भर है, उसी प्रकार समाजरूपी ताजमहल की नींव के पत्थर स्वरूप ये निम्न वर्ग के लोग हैं। केवल ऊपरी बातों को देखनेवाले प्रेक्षक का ध्यान मीनारों की ओर ही जाना स्वाभाविक है, तथापि समाज के सच्चे हितचिंतकों को इन नींव के पत्थरों की ओर ध्यान देना अत्यावश्यक है। क्योंकि ये पत्थर दिन-प्रति-दिन खोखले होकर भिन्न-भिन्न व्यसनरूपी आधि-व्याधि के सेवक बन जाने से समाज-रूपी महल का भार उठाने में असमर्थ हो गए हैं। यदि कुछ दिन तक बराबर यही दशा बनी रही, तो जिनकी सुंदरता को देख हम कौतुक करते हैं, वे मीनारें कब गिर पड़ेंगी, यह नहीं कहा जा सकता। हमारा शारीरिक श्रम उठाकर पेट भरनेवाला विभाग मदिरा, अफ़ीम, जुआ आदि अनेक प्रकार के व्यसनों का आदी बन गया है, और इस आदत को निभाने के लिये उसकी सर्व सामर्थ्य व्यय हो जाने से समाजरूपी भवन का भार उठाने को वह अब बिलकुल असमर्थ बन गया है।

समाज के नेताओं को इन लोगों में मिलकर उनके समान ही बनते हुए उनके भिन्न-भिन्न व्यसनों का ध्यानपूर्वक निरीक्षण करके उनसे मुक्त करने के लिये व्यावहारिक उपायों की यथाशक्य शीघ्र योजना करनी चाहिए। इन लोगों का समाज में कौन-सा स्थान है, और उन पर क्या-क्या जवाब-दिही है, और उन्हें पूरी करने के लिये उनमें किन-किन गुणों का होना आवश्यक है, इन सब बातों से उन्हें परिचित बना कर उनका सामाजिक महत्त्व उनके अंतःकरण पर अंकित कर देना चाहिए। इसी में सबका कल्याण है।

उन लोगों के साथ रहकर उनकी अभिरुचि, विषय-वासना और सुख-दुखों का निरीक्षण कर दशा सुधारने के लिये मेरी अल्पमति के अनुसार उपयुक्त माने हुए उपायों को मैं द्वितीय परिच्छेद में बतला ही चुका हूँ। समाज-सुधार-संबंधी विचार करते-करते मुझे दृढ़ विश्वास हो गया है कि मेरे दिखाए हुए उपायों द्वारा यदि सुधार किया जायगा, किंवा समाज में जब इस सुधार का सूर्योदय होगा, अथवा जब इस सुधाररूपी सूर्य की किरणें समाज के क्षितिज पर गिरेंगी, और इतने दिनों तक बड़ी उत्कंठा से प्रतीक्षा किए जानेवाले सुधारों का समाज में—

## 'जब सूर्योदय होगा'

पढ़ते-पढ़ते मनोहरलाल के नेत्रों में आँसू आ गए और उनका गला भर आया। जिस हीनावस्था में जीवन बितानेवाले लोगों की दशा सुधारने के लिये २० वर्ष से मनोहरलाल उद्विग्न रहा करते थे, समाज से विच्छेद पाए हुए जिन लोगों के सुधार के लिये इतने

दिन तक उनके मन में घुलते रहनेवाले ये विचार, जिनका उन्हें रात-दिन निदिध्यास हो रहा था, उनका वही मनोराज्य—रुग्णावस्था में भी क्षण-भर के लिये उनकी दृष्टि से ओट न होनेवाला मनोराज्य—द्रव्याभाव से सूर्य का प्रकाश न पा सकनेवाले उनके ये विचार आज समाज के सम्मुख पुस्तक-रूप में प्रकाशित हो सके, इन्हीं बातों पर विचार कर वे गद्गद हो गए।

उन्होंने एक बार फिर 'जब सूर्योदय होगा' ये शब्द उच्चारण किए, और उनके नेत्रों से अविरल अश्रुधारा प्रवाहित हो चली। उनसे आगे न पढ़ा गया, और हाथ की पुस्तक ज़मीन पर गिर पड़ी।

सरदार साहब ने भी गद्गद कंठ होकर कहा—"अहा! समाज-सुधार के कैसे सांगोपांग विचार हैं। समाज के कल्याण के लिये कैसी आंतरिक वेदना और विचलता है।"

सरदार साहब ने रामनाथ की ओर देखा, उन्होंने भी सिर हिलाकर साक्षी दी, क्षण-भर ठहर सरदार साहब ने फिर कहा—"फ्री लाइब्रेरियाँ, सार्वजनिक वाचनालय स्थापित कर देने को ही अब तक मैं समाज-सुधार का उपाय समझता था और यहीं तक मेरे व्यावहारिक नियमों की व्यापकता थी। किंतु रामनाथ! इस पुस्तक के सुनने-मात्र से मुझे अपने विचार भ्रमात्मक जान पड़े और मुझे दृढ़ विश्वास हो गया है कि समाज की दशा उसी दिन सुधरेगी, जिस दिन इस पुस्तक में दिखाए हुए अमूल्य उपायों की ओर नेतागण पूर्णरूप से ध्यान देंगे! जब ये विचार कार्य-रूप में परिणत होंगे और समाज में इनका जब सूर्योदय होगा!"

रामनाथ ने कहा—"निःसंशय, उसी दिन समाज की दशा सुधरेगी।"

---

# त्रयोविंशति परिच्छेद

## उपसंहार

सरदार साहब की प्रकृति बड़ी शीघ्रता से सुधर गई। इसके बाद एक शुभ मुहूर्त में रामेश्वर के साथ विमला का बड़े समारोह से विवाह हो गया। इस मंगल समारंभ से पूर्व ही भानुप्रसाद और उसके साथियों पर अभियोग चलाया जाकर उन्हें कालेपानी की सज़ा दी जा चुकी थी।

अब मनोहरलाल और लक्ष्मीबाई के सहवास में सरदार साहब के दिन बड़े आनंद से कटते हैं। उनके नेत्र सदा के लिये बेकाम हो जाने से उनकी प्रिय पुस्तक को मनोहरलाल स्वतः पढ़कर सुनाया करते हैं।

'जब सूर्योदय होगा' इस पुस्तक के द्वारा मनोहरलाल की बड़ी ख्याति हुई, किंतु ऐश्वर्य और लौकिक प्रभुत्व के गर्व में आकर वे रामनाथ को कभी नहीं भूले। वे वारंवार कहा करते—"मेरा भाग्योदय रामनाथ के द्वारा ही हुआ है। वे ही मेरे उद्धारक हैं।"

पुस्तक की प्रथमावृत्ति की लाखों प्रतियाँ बिकीं। एक वर्ष में ही दस आवृत्तियाँ निकलीं। प्रथमावृत्ति के सिवा शेष सभी आवृत्तियों पर 'सहकारी संपादक' के नाते मनोहरलाल ने रामनाथ का नाम उनकी इच्छा न रहते हुए भी प्रकाशित करा दिया। इस बात पर गोविंद को बहुत बुरा लगा। एक दिन अपने क्रोध को प्रकट करने के लिये उसने रामनाथ से कहा—

"क्या इस पुस्तक के लिये मैंने कुछ भी नहीं किया? क्या मेरा नाम कहीं भी लिखे जाने योग्य न था?"

रामनाथ ने कहा—"तेरे काम की तो प्रशंसा तक नहीं की जा

सकती। भला ऐसा काम कौन कर सकता है ? तूने बुद्धि की शुद्धि और चक्कर को शक्कर लिखकर पुस्तक को बिगाड़, नहीं-नहीं सुधार देने के काम में बड़ी अच्छी सहायता दी !"

गोविंद ने ठसक से कहा—"हूँ ! ऐसी बात है ! ठीक है !! फिर कभी ऐसा मौक़ा मिलने पर सब विषय-विवेचन मैं अपने ही हाथ से करूँगा। देखता हूँ तब कौन मेरा नाम नहीं छापता । ख़ैर, बेटा मोती ! चलो, अब हम और पुस्तक ढूँढने चलें।